सत्साहित्य-प्रकाशन

उत्तराखण्ड के पथ पर

—केदार-बदरी की यात्रा का सजीव वर्णन—

यशपाल जैन

●

१९६१

सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

उन धर्म-निष्ठ तथा प्रकृति-प्रेमी

नर-नारियों को

जो

इच्छा होते हुए भी

उत्तराखंड की यात्रा एवं दर्शन से वंचित रहे हैं।

—यशपाल जैन

प्रकाशकीय

कुछ समय पूर्व लेखक की 'जय अमरनाथ' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई थी, जिसमें उन्होंने काश्मीर, विशेषकर वहां के महान तीर्थ अमरनाथ की यात्रा का बड़ा ही सजीव एवं मनोरंजक विवरण उपस्थित किया था। वह पुस्तक इतनी लोकप्रिय हुई कि उसका पहला संस्करण हाथों-हाथ बिक गया और हमें दूसरा संस्करण प्रकाशित करना पड़ा।

हर्ष है कि लेखक की यह अन्य यात्रा-पुस्तक पाठकों के हाथों में पहुंच रही है। इसमें उन्होंने हिमालय में स्थित केदारनाथ तथा बदरीनाथ तीर्थों के प्रवास का विशद वर्णन किया है। अमरनाथ की भांति उन्होंने यह विवरण भी स्वयं यात्रा करके प्रस्तुत किया है, इसलिए वह बड़ा ही सजीव तथा आकर्षक बन पड़ा है। पुस्तक पढ़ते-पढ़ते अनेक स्थलों के चित्र पाठकों की आंखों के आगे घूम जाते हैं और ऐसा लगने लगता है, मानों पाठक स्वयं लेखक के साथ यात्रा कर रहा है।

पुस्तक को अधिकाधिक उपयोगी बनाने के लिए अनेक चित्र, नक्शा तथा चट्टियों आदि की आवश्यक जानकारी दे दी है। यात्रा-विवरण को पढ़कर तथा चित्रों को देखकर पाठकों को पता चलेगा कि इस यात्रा के दौरान में कितने मनोरम स्थल पड़ते हैं और यह यात्रा कितनी आनंद-दायक है।

बदरी-केदार की सारे देश में मानता है और प्रतिवर्ष हजारों यात्री वहां जाते हैं। हमें विश्वास है कि इन दोनों तीर्थों की यात्रा करनेवालों को इस पुस्तक से अच्छा मार्ग-दर्शन मिलेगा और जो यात्रा नहीं कर पाये हैं, वे इसे पढ़कर घरबैठे यात्रा का रस प्राप्त कर सकेंगे।

दूसरा संस्करण

पुस्तक का दूसरा संस्करण पाठकों के हाथों में पहुंच रहा है। हमें पूर्ण विश्वास है कि पहले की भांति यह संस्करण भी बड़े चाव से पढ़ा जायगा।

—मंत्री

दो शब्द

लेखक के लिए निश्चय ही यह बड़े संयोग तथा सौभाग्य की बात थी कि सन् १९५४-५५ में दस महीने के भीतर उसे तीन लंबी यात्राएं करने का अवसर मिला। पहली यात्रा थी काश्मीर तथा उसकी गोद में स्थित अमरनाथ की, दूसरी दक्षिण भारत अर्थात् रामेश्वर-कन्याकुमारी तक की और तीसरी उत्तराखण्ड की। इन तीनों यात्राओं में देश के बहुत बड़े भाग के उसे दर्शन हुए और अनुभव के साथ-साथ उसे अत्यंत मानसिक स्फूर्ति मिली।

फलतः तीनों ही यात्राओं पर उसने विस्तार से लिखा। काश्मीर-प्रवास का वर्णन 'जय अमरनाथ' के नाम से पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुआ। पत्रों में तथा आकाशवाणी के विभिन्न केंद्रों से उसकी उत्साह-वर्द्धक समीक्षाएं हुईं और पाठकों ने भी उसे बहुत पसंद किया।

दक्षिण की यात्रा पर एक लेख-माला 'नवभारत टाइम्स' के दिल्ली तथा बंबई संस्करणों में प्रकाशित हुई। उसके एक दर्जन से अधिक लेखों में अनेक तीर्थों एवं दर्शनीय स्थलों का विस्तृत हाल पाठकों के लिए प्रस्तुत किया गया।

लेकिन उत्तराखण्ड की यात्रा का निराला आनंद था। पच्चीस दिन तक बराबर पर्वतों, वनों, नदियों, प्रपातों तथा देश के विभिन्न भागों के सहस्रों यात्रियों का साथ रहा और उस सबकी लेखक के हृदय पर इतनी गहरी छाप पड़ी कि वह यात्रा उसके लिए चिर-स्मरणीय बन गई।

प्रवास से लौटते ही उसने यात्रा का विवरण लिख डाला, जो लेख-माला के रूप में 'नवभारत टाइम्स' में प्रकाशित हुआ। उसे पढ़कर अनेक पाठकों ने अनुरोध किया कि वह सामग्री पुस्तकाकार प्रकाशित होनी चाहिए।

पाठकों के इसी आग्रह के परिणामस्वरूप यह पुस्तक प्रकाशित हो रही है। समाचार-पत्रों में स्थान की तंगी होती है। इसे ध्यान में रखकर लेखों

में बहुत-से विवरण या तो संक्षिप्त कर दिये गए थे, या बिल्कुल छोड़ दिये गए थे। उन्हें इस पुस्तक में पूरा कर दिया गया है। बहुत-सी ऐसी घटनाएं, जो उस समय ध्यान से उतर गई थीं, पुस्तक में परिवर्द्धन करते समय अकस्मात याद आ गईं और उन्हें जोड़ दिया गया। इस प्रकार प्रयत्न किया गया है कि पुस्तक पाठकों के लिए अधिकाधिक उपयोगी बने।

इसमें लेखक को कहांतक सफलता मिली है, इसका निर्णय तो पाठक ही कर सकेंगे। यदि उत्तराखण्ड के इन तीर्थों की यात्रा करनेवाले सहस्रों नर-नारियों में से कुछको भी इस पुस्तक से मदद मिली या किसी पाठक को इसे पढ़कर यात्रा करने की प्रेरणा मिली तो लेखक को बड़ा संतोष होगा और वह अपने परिश्रम को सफल समझेगा।

तीर्थ-यात्रा के लिए लेखक में अंधश्रद्धा नहीं है, जो वहां जाने वाले अधिकांश यात्रियों में होती है। वह तीर्थों को प्रकृति-देवी का बहुत बड़ा वरदान मानता है, इसलिए उसका मुख्य उद्देश्य प्रकृति की छटा तथा महिमा के दर्शन करने का रहता है; लेकिन जब-जब उसे यात्रियों की आंखों में भगवान के दर्शन होते हैं, उसके बहुत-से संस्कार जागृत हो उठते हैं। यही कारण है कि उसके यात्रा-विवरण में जहां प्राकृतिक सौंदर्य का चित्र रहता है, वहां तीर्थों के धार्मिक स्वरूप की झांकी भी सहज सुलभ हो जाती है। इस प्रकार धर्म-परायण यात्री तथा प्रकृति-प्रेमी पर्यटक दोनों ही पुस्तक को अपने काम की पा सकते हैं।

पुस्तक की सामग्री के बारे में लेखक को कुछ नहीं कहना। उसकी तैयारी में उसे जिन सुहृद व्यक्तियों का सहयोग मिला है, उनका वह आभार मानता है।

७/८ दरियागंज,
दिल्ली।

— यशपाल जैन

विषय-सूची

परिशिष्ट

उत्तराखंड

के

पथ पर

: १ :

देवभूमि हिमालय

सैर कर दुनिया की ग़ाफ़िल, ज़िंदगानी फिर कहां !
ज़िंदगी गर कुछ रही, तो नौजवानी फिर कहां !

हिमालय का पुराने जमाने से ही बड़ा महत्व और आकर्षण रहा है। जिन दिनों यातायात की सुविधाएं नहीं थीं, उन दिनों भी देश-विदेश के अनेक लोग उसकी ओर उत्सुकता से देखते थे और भांति-भांति की कठिनाइयों का सामना करते हुए उसके विभिन्न स्थलों की यात्रा करने का प्रयत्न करते थे। पर अब तो स्थिति बहुत बदल गई है। दुर्गम स्थानों में मार्ग बन गये हैं, मोटर-बसें चलने लगी हैं, पैदल-यात्रा के रास्तों में टट्टू, कण्डी, डांडी आदि मिल जाते हैं। आवागमन के साधनों की सुविधाओं के फलस्वरूप आज संसार के सहस्रों प्रकृति-प्रेमी पर्यटक हिमालय की रोमांचकारी चोटियों और मनोरम उपत्यकाओं में विचरण करने जाते हैं और अनगिनत श्रद्धालु यात्री वहां के तीर्थों की यात्रा करके बड़ी धन्यता अनुभव करते हैं।

सुविख्यात विदेशी पर्यटक सर जान स्ट्रैची ने लिखा है, "मैंने यूरोप के बहुत-से पर्वतों को देखा है, किन्तु अपनी विशालता तथा भव्य सौंदर्य में उनमें से कोई भी हिमालय की तुलना में नहीं आ सकता।"

प्राचीन काल में हिमालय को पांच खंडों में विभक्त किया

गया था :

"खंडाः पंच हिमालयस्य कथिता नेपाल-कूर्माचलौ ।

केदारोऽथ जलंधरोऽथ रुचिरः कश्मीर-संज्ञोऽन्तिमः ॥"

वे पांच खंड हैं—१. नेपाल २. कूर्माचल ३. केदार ४. जलंधर तथा ५. काश्मीर। काली नदी के पूर्व में नेपाल-खंड है, पश्चिम में कूर्माचल या कुमाऊं। यह खण्ड आजकल अलमोड़ा और नैनीताल के दो जिलों में बंटा हुआ है। कूर्माचल की पश्चिमी सीमा से यमुना तक केदार-खंड है, अर्थात् गंगा और यमुना का सारा पनढर इसमें सम्मिलित है। मध्यकाल में छोटे-छोटे सामंतों की ५२ गढ़ियों (राज्यों) में विभक्त होने के कारण इसे गढ़, गढ़वाल अथवा बावनी कहा जाने लगा। पूर्वकाल में देहरादून भी गढ़वाल का अंग था; लेकिन अंग्रेजों ने उसे मेरठ कमिश्नरी में डाल दिया। आजादी के बाद जब भारत का पुनर्गठन हुआ तो टेहरी राज्य को उत्तर प्रदेश में मिलाकर उसका एक स्वतंत्र जिला बनाया गया।

पुराने समय में जलंधर पश्चिमी हिमालय का एक बड़ा खण्ड था, जिसमें सतलज, व्यास, रावी और चुनाब, ये नदियां बहती थीं। आज उसकी सीमा बदल गई है। वह शिमला-कांगड़ा अर्थात् हिमाचल प्रदेश तक सीमित है।

काश्मीर पंजाब के उत्तर में है और अपने सौंदर्य के लिए सारी दुनिया में प्रसिद्ध है।

हिमालय की भूमि अनेक दृष्टियों से अत्यन्त मनोरम है। उसके शिखर, उसकी उपत्यकाएं, उसकी नदियां, उसके वन, उसके प्रपात, उसके निवासी, सब अपनी विशेषता रखते हैं। तीर्थों की तो हिमालय में भरमार है। उसके पांचों खण्डों में से एक भी

खण्ड ऐसा नहीं है, जहां श्रद्धालु नर-नारियों के लिए छोटे-बड़े बीसियों तीर्थ न हों। भांति-भांति की धर्म-कथाएं इन तीर्थों के साथ जुड़ी हुई होने के कारण तीर्थ-यात्रियों को वहां की यात्रा सदा सुखद होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे पूर्व-पुरुषों ने प्रकृति के साथ धर्म को जोड़कर बड़ी दूरदर्शिता का काम किया। यदि विभिन्न स्थानों की रमणीकता के साथ धर्म-कथाएं संबद्ध न होतीं तो बहुत-से लोगों के लिए अलौकिक हिमालय अगम्य और अगोचर रह जाता। यही कथाएं हैं, जो दुर्बल एवं अपंग व्यक्तियों तक को वहां की यात्रा करने की प्रेरणा देती हैं।

हिमालय में यों तो बहुत-से दर्शनीय स्थान हैं, लेकिन सबसे अधिक महत्व और लोकप्रियता प्राप्त हुई है केदारखंड को। पौराणिक मतानुसार गढ़वाल केदारखंड के नाम से प्रसिद्ध है। इसका कारण यह माना जाता है कि द्वादश ज्योतिर्लिंगों में से एक लिंग केदारनाथ उस भूखंड का स्वामी है और इसीसे उस भू-भाग का नाम केदारखंड पड़ा है। उसके विस्तार का उल्लेख निम्नलिखित श्लोक में आता है :

पंचाशद् योजनायामं त्रिंशद्-योजनविस्तृतम्, ...
गंगाद्वारमर्यादं श्वेतान्तं वरवर्णिनि।
तमसातटतः पूर्वभागे बौद्धाचलं शुभम्,
केदारमंडलं ख्यातं भूम्यास् तद् भिन्नकं स्थलम्। ....

(स्कंदपुराण, केदारखंड, अध्याय ४०)

अर्थात्—पचास योजन लंबा और तीस योजन चौड़ा, हरिद्वार से लेकर हिमालय तक और तमसा नदी से लेकर बौद्धाचल तक का जो भाग है, वह केदारखंड है।

इस केदारखंड के अंतर्गत बहुत-से तीर्थ हैं, जिनमें केदारनाथ,

बदरीनाथ, गंगोत्री, यमुनोत्री आदि की विशेष रूप से मानता है। इन तथा अन्य अनेक तीर्थों के होने तथा व्यास, वसिष्ठ, शंकराचार्य, विवेकानंद, रामतीर्थ आदि मनीषियों की साधना के कारण यह भूमि देवभूमि तथा तपोभूमि के नाम से भी विख्यात है।

: २ :

यात्रा की तैयारी और प्रस्थान

पर्वतों के लिए मेरे मन में बड़ा आकर्षण है। जब-जब पहाड़ों में जाने और घूमने का मुझे अवसर मिलता है, हृदय पुलकित हो उठता है। ऐसा लगता है, मेरे जीवन को नये प्राण मिल गये। मेरा यह पर्वत-प्रेम मुझे न जाने कहां-कहां खींचकर ले गया है।

पिछले दिनों जब हम काश्मीर गये और लगभग एक मास वहां के विभिन्न स्थानों में घूमे, अमरनाथ की यात्रा की तो विचार बना कि प्रतिवर्ष गर्मियों में कुछ दिनों के लिए किसी-न-किसी यात्रा की योजना रहनी चाहिए, किसी पहाड़ी प्रदेश की हो तो और भी अच्छा। यह सन् १९५४ की बात है। अगले साल गर्मियां आने पर अपने साथियों से चर्चा की तो हमारे मित्र श्रीविनायकराव यशवंत घोरपड़े (केंद्रीय मंत्री डाक्टर केसकर के निजी सचिव) की राय हुई कि इस बार बदरी-केदार की यात्रा की जाय। इस यात्रा की इच्छा बहुत दिनों से थी। हिंदी के साहित्य-कार श्री विष्णु प्रभाकर वहां हो आये थे और वहां की बहुत ही रोचक तथा मनोरंजक बातें सुनाया करते थे। जब घोरपड़ेजी ने इस यात्रा का प्रस्ताव रक्खा तो विष्णुभाई ने न सिर्फ उसका अनुमोदन किया, अपितु कहा कि वह भी साथ चलेंगे। अमरनाथ के मार्ग की बीहड़ता का हाल वह मुझसे सुन चुके थे। उन्होंने बताया कि रास्ता मुश्किल जरूर है, लेकिन अमरनाथ जैसा नहीं। 'सस्ता साहित्य मंडल' के मंत्री श्री मार्तण्डजी उपाध्याय के सामने ये

चर्चाएं हुई थीं। अमरनाथ की यात्रा हम लोगों ने साथ-साथ की थी। उनकी भी राय हुई कि इस साल बदरी-केदार ही चलना चाहिए।

विचार पक्का होने पर जब और लोगों को मालूम हुआ तो कई-एक ने साथ चलने की इच्छा प्रकट की। संयोग से जैन-विद्वान डाक्टर हीरालाल जैन उन दिनों नागपुर से दिल्ली आये हुए थे। उनसे चर्चा हुई तो उन्होंने कहा कि वह भी चलेंगे और साथ में उनकी दो पुत्रियां। दैनिक 'हिंदुस्तान' के सह-संपादक श्री शोभालाल गुप्त ने सपत्नीक चलने को कहा। विष्णुभाई के साथ उनके अनुज प्रह्लाद भी चलने की तैयारी करने लगे। श्री मार्तण्डजी की पत्नी श्रीमती लक्ष्मीदेवी उपाध्याय की तो बहुत दिनों से तीर्थ करने की इच्छा हो रही थी। वह तैयार हुईं तो उनके सुपुत्र माधव उपाध्याय भी पीछे न रहे। दिल्ली के जैन-समाज-सेवी श्री राजकृष्ण जैन अपने एक सहयोगी श्री दीपचंद के साथ चलने को उद्यत हो गये। इस प्रकार १६ मई १९५५ को हमारी टोली दिल्ली से प्रस्थान करने को तैयार हुई। उसमें १७ जने थे। उपरोक्त व्यक्तियों के अतिरिक्त श्री शोभालालजी की पड़ोसिन माताजी बढ़ गईं। उधर हीरालालजी के साथ हिंदी ग्रंथ-रत्नाकर, बंबई के संचालक श्री नाथूरामजी प्रेमी की पुत्रवधू श्रीमती चम्पादेवी तथा हीरालालजी की छोटी पुत्री सुमित्रा के साथ ६ वर्ष का बालक चि० विजय आगया। घोरपड़ेजी थे ही और इन पंक्तियों का लेखक। इस प्रकार हमारी टोली बनी।

यात्रा के बारे में पूरी जानकारी पहले से ही लेकर आवश्यक सामान जुटाया। इस यात्रा में जानेवालों के लिए हैजे के टीके लगवाना अनिवार्य होता है। जिन्हें सुविधा थी, उन्होंने दिल्ली में

लगवा लिये। बाहर से जो लोग देर से पहुंचे या जो व्यस्तता के कारण न लगवा पाये, उनके लिए तय किया कि हरिद्वार में लगवा लेंगे। वहांपर भी उसकी व्यवस्था रहती है।

उन दिनों गर्मी खूब जोरों की पड़ रही थी। इसलिए सवेरे की सबसे पहली बस से दिल्ली से रवाना हुए। दिल्ली से हरिद्वार १६३ मील है। बस अच्छी थी। रास्ता साफ़-सुथरा। मेरठ तक विशेष गर्मी नहीं मालूम हुई, लेकिन मुजफ्फरनगर और बाद में रुड़की तक पहुंचते-पहुंचते हैरान होगये। फिर भी आपस में विनोद करते और हँसते रहे। इससे यात्रा भारी नहीं मालूम पड़ी। वैसे भी सफर के शुरू में स्वाभाविक रूप से अधिक उत्साह रहता है।

: ३ :

उत्तराखंड के द्वार पर

रुड़की से रास्ता नहर-गंग के किनारे-किनारे होने के कारण गर्मी कुछ कम होगई। उधर का मार्ग यों भी काफ़ी रोचक हैं। मजा तब आता है जब पुल पर नहर बहती दिखाई देती है और नीचे नदी की धारा। एक जगह नदी को मोड़कर नहर में मिला दिया गया है। उल्टी बात हुई है। देखने में बड़ा आनंद आता है। आगे चलकर हिमालय के दर्शन होने लगे। तब सारी टोली मौसम की प्रतिकूलता को भूल गई।

हरिद्वार से कुछ पहले ज्वालापुर की चुंगी-चौकी आई, जहां और बसों के साथ हमारी बस को काफी देर रोका गया। यह देरी बड़ी अखरी, पर करते क्या ! आखिर २॥ बजे, जबकि सूर्य की प्रखरता पूरी तरह से परीक्षा ले रही थी, हमारी टोली हरिद्वार पहुंची।

हरिद्वार पहुंचकर बिड़ला गैस्ट हाउस में डेरा डाला। यात्रियों का कोफी जमघट होने के कारण स्थान की बड़ी तंगी थी, लेकिन हम लोगों ने पहले से सूचना दे रखी थी, जिससे दो कमरे आसानी से मिल गये। सामान जमाकर, रास्ते की थकान और गर्मी से छुट्टी पाने के लिए सबसे पहले गंगाजी में स्नान करने के लिए हरि की पौड़ी पर गये। बड़ा शीतल जल था। स्नान करके सारी थकान दूर हो गई। नई स्फूर्ति आ गई। फिर बाजार में जाकर भोजन किया। थोड़ी देर विश्राम करके शाम को घूमने निकले।

वस्तुतः हरिद्वार का सबसे बड़ा आकर्षण हरि की पौड़ी है। वहां यात्री गंगाजी में स्नान और मंदिरों में दर्शन करते हैं। उत्तर भारत का हरिद्वार प्रसिद्ध तीर्थ है। केदार-बदरी की यात्रा का वह द्वार माना जाता है। सच यह है कि उस स्थान की शोभा उसके प्राकृतिक सौंदर्य में है। पृष्ठभूमि में पर्वत-शृङ्खलाएं हैं, और गंगा इतने वैभवशाली रूप में बहती है कि देखकर मन पुलक उठता है। शाम के समय वहां बड़ी चहल-पहल हो जाती है। भजन-कीर्तन होते हैं, कथाएं होती हैं और श्रद्धालु नर-नारियों की मनोकामनाओं की सिद्धि के लिए घी के दिये जलाकर धारा में प्रवाहित किये जाते हैं। संध्या और रात्रि की उस मिलन-वेला में हरि की पौड़ी की धारा टिमटिमाते दीपकों के प्रकाश में जगमगा उठती है। आरती के समय मंदिरों में अच्छी-खासी भीड़ हो जाती है। स्थान जितना सुंदर है, उतना ही गंदा है। बीसियों भिखमंगे यात्रियों का चलना दूभर कर देते हैं। भजनीकों, कथा-वाचकों आदि का इतना कोलाहल होता है कि एकाग्र चित्त से वहां की प्राकृतिक सुषमा का आनंद लेना मुश्किल हो जाता है। सात पुरियों में से जिसे एक पुरी होने का गौरव प्राप्त है, उसकी गंदगी देखकर मन बड़ा खिन्न होता है। ये सात पुरियां हैं :

अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, कांची, अंवतिकाः।
पुरी द्वारावती ज्ञेया, सप्तै ते मोक्ष-दायिका॥

मायापुरी हरिद्वार का ही प्राचीन नाम है। पहाड़ों से उतरकर यहीं से गंगा मैदान में बहना आरंभ करती है। यह प्रदेश इतना सुरम्य है कि कहते हैं किसी समय में यहां देवी-देवता निवास करते थे। महाभारत के 'वन-पर्व' में इसका उल्लेख आता है।

हरिद्वार को दो प्रकार से संबोधित किया जाता है। हरिद्वार,

अर्थात् विष्णु का द्वार; और हरद्वार, यानी शिव का द्वार। इस प्रकार यह स्थान विष्णु तथा शिव, दोनों के उपासकों के लिए वंदनीय है।

बदरी-केदार की यात्रा यहीं से प्रारंभ होती है। काफी बड़ी नगरी है, लंबा-चौड़ा बाजार है। यात्रियों के ठहरने के लिए छोटी-बड़ी बहुत-सी धर्मशालाएं तथा दूसरे ठिकाने हैं। देश के सभी भागों से हर साल हजारों यात्री यहां आते हैं।

रेलवे स्टेशन से थोड़ा आगे तिराहे पर एक पुराना वट-वृक्ष था, जिसे काटकर उसके स्थान पर मृत्युंजय की विशाल मूर्ति बनवा दी गई है। उस मूर्ति के साथ ऐसी व्यवस्था है कि मूर्ति पर चौबीसों घंटे स्वत: ही जलाभिषेक होता रहता है। प्रतिमा बड़ी सुंदर है।

यहीं से एक सड़क कनखल को जाती है। आगे चलकर गीता-भवन है, जिसके पीछे गंगा के किनारे मायादेवी का मंदिर है। ब्रह्मा के पुत्र दक्ष प्रजापति की कन्या सती का ही नाम मायादेवी है। इनकी इस जगह बड़ी मानता है। इनके पास ही भैरव तथा महादेव के मंदिर हैं।

जैसाकि हम ऊपर कह चुके हैं, यहां का सबसे मनोरम स्थान है हरि की पौड़ी। वहां स्नान की अच्छी व्यवस्था है और वहां से चारों ओर के दृश्य बहुत अच्छे लगते हैं। हरि की पौड़ी पर दर्शन के लिए चार मंदिर हैं—गंगा-मंदिर, बारहखंभा-मंदिर, शंकराचार्य का मंदिर तथा नवग्रह-मंदिर।

गंगाजी की एक चौड़ी पर कम गहरी धारा में, जो ब्रह्मकुंड कहलाती है, लोग स्नान करते हैं। जनश्रुति है कि सबसे पहले यहीं पर ब्रह्मा ने गंगा का स्वागत किया था। इसलिए इसका नाम ब्रह्म-

कुंड पड़ा। यात्रियों की सुविधा के लिए यह धारा निकाल ली गई है। वास्तव में मुख्य धारा तो बहुत विशाल है और उसमें नावें चलती हैं। बहुत-से लोग तैरकर भी उसे पार करते हैं। इन दोनों धाराओं के बीच एक विशाल घाट है, जिसपर ऊंचा घंटाघर है। इस घाट पर आने के लिए ब्रह्मकुंडवाली धारा को पुल द्वारा पार करना होता है।

हरि की पौड़ी से आगे तक गंगा का पक्का घाट है, जिसपर चाट तथा फूलों का बाजार लगा रहता है। यहीं से यात्री फूल लेकर गंगा में तथा मंदिरों में चढ़ाते हैं और शाम को इन्हीं दुकानों से सामान ख़रीदकर गंगा में दीप-दान करते हैं।

चाट की दुकानों पर तो शाम को बेहद भीड़ रहती है। पास ही दक्षिण की ओर कुशावर्त घाट है, जिसका निर्माण इंदौर की महारानी अहिल्याबाई ने कराया था। जनश्रुति है कि यहींपर एक पैर पर खड़े होकर बहुत वर्ष तक दत्तात्रेय ने तप किया था। जब वह ध्यानस्थ थे, गंगाजी बहती हुई आईं और उनके कमंडल तथा कुशा आदि को बहाकर ले गईं। लेकिन गुरु के तप के प्रभाव से वह आगे न जा सकीं। दत्तात्रेय ने नेत्र खोले तो उन्हें यह देखकर बड़ा क्रोध आया कि उनका सामान बह गया। उन्होंने रोष में गंगा को सुखाना चाहा, लेकिन ब्रह्मा के अनुरोध पर वह शांत हो गये।

हरि की पौड़ी से उत्तर को कुछ दूरी पर 'भीमगोड़ा' नामक स्थान है। कहा जाता है कि संसार से विरक्त होकर जब पांडव उत्तराखंड को जाने लगे तो धर्मपुत्र के कहने पर भीम ने यहीं अपना गोड़ (पैर) गाड़कर प्रतिज्ञा की थी कि मैं आगे शस्त्र नहीं उठाऊंगा। वहांपर एक तालाब है। शिवजी का मंदिर और भीम की मूर्ति है।

हरिद्वार से लगभग डेढ़ मील पर चंडी का मंदिर है। यह मंदिर पहाड़ी की चोटी पर बना है। इसे 'सिद्ध-स्थान' कहते ह। इसके पास ही दूसरी पहाड़ी पर अंजना देवी का मंदिर है। इन चोटियों पर से हरिद्वार तथा चारों ओर का दृश्य बड़ा सुंदर दिखाई देता है।

यहां से एक रास्ता दक्षिण दिशा को जाता है। नीचे उतरने पर गौरीशंकर महादेव का मंदिर मिलता है और वहां से दो फर्लांग पर नीलेश्वर महादेव का।

कनखल हरिद्वार की उपबस्ती समझिये। पर उसका अपना महत्व है। किसी जमाने में वह महाराज दक्ष की राजधानी थी। वहां दक्षेश्वर का मंदिर है। दक्ष प्रजापति ने शिव ज्योतिर्लिंग की स्थापना यहींपर की थी। शिवरात्रि के पर्व पर यहां बहुत बड़ा मेला लगता है। दक्षेश्वर के मंदिर के निकट ही सीतला देवी तथा हनुमान के मंदिर हैं। आधा-पौन मील पर 'सतीकुंड' है, जिसमें शंकर-प्रिया सती भस्म हुई थीं।

यहां से कुछ दूरी पर सुप्रसिद्ध शिक्षा-केंद्र गुरुकुल कांगड़ी है।

हरिद्वार के निकट ज्वालापुर भी अच्छी जगह है। यद्यपि धार्मिक दृष्टि से उसका विशेष महत्व नहीं है, तथापि पंडों के बहुत-से घर होने के कारण वहां अच्छी चहल-पहल रहती है।

हरिद्वार में अनेक आश्रम तथा महंतों की गद्दियां भी हैं। कुछ गद्दियां तो जागीरों की भांति हैं और उनके महंतों का राजाओं जैसा मान होता है।

हरिद्वार मैं कई बार हो आया हूं। बस्ती में काफी घूमा हूं। हरि की पौड़ी का कोलाहल बहुत अच्छा नहीं लगता; लेकिन ब्रह्म-कुंड में स्नान करने में बड़ा आनंद आता है। हमारी टोली ने संध्या

को वहां जाकर स्नान किया। वहीं टीके लगवाने की व्यवस्था थी। टोली में जिनके टीके नहीं लगे थे, उन्होंने टीके लगवाये। फिर बाजार में आये। पहाड़ों पर चढ़ाई के लिए लाठियां तथा कुछ दूसरा सामान खरीदना था, सो लिया। तत्पश्चात गैस्ट हाउस लौटकर आगे का कार्यक्रम बनाया। बहुत-से यात्री बदरी-केदार, गंगोत्री-यमुनोत्री जाने के लिए हरिद्वार आये हुए थे। १३ मई को केदार-बदरी के पट खुल गये थे। पूछने पर मालूम हुआ कि उस समय तक लगभग पांच हजार यात्री आ चुके थे।

लंबी यात्रा थी। मन में तरह-तरह की आशंकाएं उठती थीं, पर अब तो निकल ही पड़े थे। रात को बस आदि की व्यवस्था करके जल्दी सो गये।

सबेरे बड़े तड़के उठे। निवृत्त होकर सामान बांधा और आगे की यात्रा के लिए टोली तैयार हो गई। पिछले दिन एक पंडा आ गया था। वह आग्रह करता था कि उसे साथ ले लो। वह हमारी यात्रा की सारी व्यवस्था कर देगा और हमें किसी तरह का कष्ट नहीं होने देगा। पर हम लोग पंडे का निर्णय ऋषीकेश जाकर करना चाहते थे।

हरिद्वार से ऋषीकेश तक रेल भी जाती है, लेकिन इतना सामान लेकर स्टेशन जाने में बड़ी असुविधा होती। बस का अड्डा पास ही था, इसलिए बस से जाना ही तय किया।

बस के अड्डे पर पहुंचे। बस तैयार थी। सामान लादकर ठीक सवा सात बजे रवाना हुए। रास्ते में ७ मील पर सत्यनारायण चट्टी आई, जहां सत्यनारायण का मंदिर है। उसमें सत्यनारायण तथा लक्ष्मी की मूर्तियां हैं। कुछ देर रुककर दर्शन करने गये।

१५ मील का रास्ता सवा घंटे में तय करके साढ़े आठ बजे ऋषीकेश पहुंचे।

: ४ :

ऋषिकेश, लक्ष्मण-झूला, स्वर्गाश्रम

बस के अड्डे के पास ही काली कमलीवाले की धर्मशाला थी। उसमें स्थान के लिए पहले से ही उसके प्रधान प्रबंधक श्री लक्ष्मीनारायणजी चतुर्वेदी को लिख दिया था। सामान अड्डे पर छोड़कर उनसे मिलने गये। उन्होंने बड़ी आत्मीयता और प्रसन्नता से दो कमरे हमारे लिए खुलवा दिये। उनमें सामान जमाकर गंगा-तट पर पहुंचे। कपड़े धोये, नहाये। लौटकर भोजन किया। थोड़ी देर आराम करके शाम होते-होते घूमने निकल पड़े। ऋषीकेश पहाड़ों की गोद में बड़ा मनोरम स्थान है। गंगाजी के दाहिने तट पर बसा है। वहां के दर्शनीय स्थानों में राम, भरत तथा हनुमान के मंदिर हैं। कहते हैं, लंका में रावण-वध करने के पश्चात् राम ने यहींपर प्रायश्चित्त के रूप में तपस्या की थी। और भी कई मंदिर और धर्मशालाएं हैं। साधुओं के अखाड़े हैं।

धर्म-ग्रंथों में उल्लेख है कि यहांपर रैम्य ऋषि ने कठोर तप किया था। उससे प्रसन्न होकर भगवान ने दर्शन दिये और कहा, "मैं आगे ऋषिकेश के नाम से प्रकट होऊंगा और इस स्थान का नाम ऋषिकेशाश्रम होगा। त्रेतायुग में दशरथ-राजकुमार भरत अपने बड़े भाईसहित हमारे चतुर्थ वंश से प्रकट होंगे। तब हम कलियुग में भरत के नाम से पुकारे जायंगे।"

हिंदी के पत्रकार और बस-सर्विस के अधिकारी श्री भगवानदास मुलतानी सूचना मिलते ही आकर मिल गये थे।

शाम को हमें घुमाने के लिए जीप लेकर आगये। हम लोग 'मुनि की रेती' की ओर रवाना हुए। ज्योंही मुनि की रेती के निकट पहुंचे, अचानक गाड़ी का एक टायर फट गया, पर भगवानदासजी ने बड़ी कुशलता से गाड़ी को संभाल लिया। जबतक उन्होंने नया टायर बदला, हम लोग 'मुनि की रेती' पर घूमते रहे। यहां गंगा का पाट बड़ा चौड़ा है। उस पार स्वर्गाश्रम की बस्ती है। नये टायर के लगने पर मुलतानीजी ने हमें लक्ष्मण-झूला पहुंचा दिया। लक्ष्मण-झूला भी देखने-योग्य स्थान है। गंगाजी पर अब तो वहां लोहे का मजबूत पुल है, लेकिन किसी जमाने में वहां रस्सी के छीके थे, जिनकी मदद से यात्री नदी पार करते थे। कितना भयंकर होता होगा उनपर नदी पार करना! ज़रा चूके कि धड़ाम से पानी में। तूफानी प्रवाह में बचने की भला क्या आशा हो सकती होगी? इस प्रकार बहुत-से भोले-भाले श्रद्धालु लोग अपने प्राणों से हाथ धो बैठते थे। अब वैसी बात नहीं है। अब तो लोग पुलपर बेखटके चलते हैं। पुल लोहे के मोटे तारों पर टिका है, नीचे कोई खंभा नहीं है। बीच में खड़े होकर हिलाने से थोड़ा हिलता है तो बड़ा मजा आता है, पर नीचे की ओर देखने में जान सूखती है। पुल से कुछ फासले पर लक्ष्मण का मंदिर है।

लक्ष्मण-झूला से स्वर्गाश्रम गये। वहां सबसे पहले काली कमली के संस्थापक की समाधि पर श्रद्धांजलि अर्पित की। इस संस्था ने लोक-सेवा का सराहनीय कार्य किया है। लाखों-करोड़ों यात्रियों को यात्रा की सुविधाएं दी हैं। आज भी दे रही है।

'गीता-भवन' वहां का महत्त्वपूर्ण केंद्र है। प्रतिवर्ष गर्मियों के दिनों में वहां अच्छा सत्संग होता है। गीता-प्रेस के संचालक और 'कल्याण' के संपादक श्री हनुमानप्रसादजी पोद्दार वहां आये हुए

थे। हम लोग उनसे मिले, जलपान किया, अनंतर 'गीता-भवन' की मोटर-बोट द्वारा नदी के उस पार स्वामी शिवानंदजी के आश्रम में आये।

स्वामी शिवानन्दजी का नाम और उनकी प्रवृत्तियों के बारे में पहले ही से बहुत-कुछ सुन रखा था। जिस समय हम वहां पहुंचे, सत्संग चल रहा था। स्वामीजी के दर्शन किये। इतनी उम्र में भी स्वामीजी के स्वास्थ्य, उनके चैतन्य और आश्रम के वायुमंडल को देखकर प्रसन्नता हुई। स्वामीजी ने बड़े स्नेह से हमारी यात्रा के लिए मंगल-कामना की और हमें कुछ पुस्तकें उपहार में दीं।

हमारे एक साथी के कैमरे के फ्लैश के सामान में गड़बड़ हो गई थी। सो यह सोचकर कि स्वामीजी की आर्ट गैलरी में शायद कुछ मिल जाय, वह वहां गये। गैलरी के संचालक एक साधु थे। उन्होंने बड़ी अच्छी तरह से हमारा स्वागत किया और हमारी जरूरत का बहुत-सा मूल्यवान सामान यह कहकर दे दिया कि आप अपना काम चला लें और यात्रा से जब वापस आवें तो उसे लौटा दें। पता तक न लिखवाया। दूर-दूर से सैकड़ों यात्री वहां आते हैं। उन्होंने क्षणभर को भी सोच-विचार नहीं किया कि यदि सामान उन्हें वापस न लौटाया गया तो वह क्या करेंगे? हमें कहां पकड़ेंगे? दूसरों पर उनका इतना विश्वास देखकर मन गद्‌गद हो गया। आपस में उन साधु के इस व्यवहार की सराहना करते हुए धर्मशाला में लौट आये। दस बज रहे थे। अगले दिन का कार्यक्रम तय करके बिस्तरो पर जा लेटे। थके होने के कारण ज़रा-सी देर में सो गये।

शाम को घूमने जाने से पहले ही हमारी टोली में एक और सज्जन शामिल हो गये थे। वह थे वर्धा के समाजसेवी श्री चिरंजीलालजी बड़जात्या। साथ चलने के लिए उन्होंने वर्धा

से पत्र लिखा था, वह हमें दिल्ली से रवाना होते समय मिला था। श्री चिरंजीलालजी दिल्ली में ही मिल जानेवाले थे, पर समय पर वहां नहीं पहुंच पाये। हमें कल्पना भी न थी कि वह यहां आकर मिलेंगे। सबको बड़ी खुशी हुई।

: ५ :

देवप्रयाग और रुद्रप्रयाग

ऋषिकेश से सात बजे रवाना हुए। उस समय मौसम बड़ा सुहावना था और चारों ओर की दृश्यावली बड़ी आकर्षक जान पड़ती थी। अबतक हम लोग समतल भूमि पर चलते आये थे। आगे अब चढ़ाई-ही-चढ़ाई थी। हमारी टोली हर्ष और उत्साह से परिपूर्ण थी। ऋषिकेश से आगे की यात्रा बस से या पैदल होती है। नदी के एक तट पर बस की सड़क है, दूसरे पर पैदल का रास्ता है। दोनों तटों के बीच गंगा नदी नाना रूपों में प्रवाहित होती है। कहीं उसका रूप बड़ा उग्र होता है, इतना उग्र कि देखकर डर लगता है; कहीं वह बहुत ही शांत दिखाई देती है।

ऋषिकेश से टेहरी होकर धरासू तक ७९ मील की सड़क है, जिसपर होकर यात्री गंगोत्री-यमुनोत्री जाते हैं। यह सड़क अब आगे उत्तर काशी तक पहुंच गई है, जिससे उधर के यात्रियों को काफी सुविधा हो गई है।

ऋषिकेश से देवप्रयाग ४२ मील है। कुछ श्रद्धालु यात्री ऋषिकेश से ही पैदल चलना प्रारंभ कर देते हैं। वास्तव में यात्रा का असली आनंद तो पैदल चलने में ही है, लेकिन समय और सुविधा की दृष्टि से बहुत-से यात्री रुद्रप्रयाग तक बस से जाते हैं। रुद्रप्रयाग से आगे उस समय बस नहीं जाती थी। अब तो वह १९-२० मील और आगे 'कुंड' चट्टी तक जाने लगी है।

ऋषिकेश से चलने पर मुनि की रेती, स्वर्गाश्रमऔर लक्ष्मण-

भूला ज़रा-सी देर में पार हो गये। लक्ष्मण-भूला की ऊंचाई ११०० फुट है। वहां हमें कुछ देर रुकना पड़ा। बसों के आने-जाने के समय निश्चित हैं। सड़कें छोटी होने के कारण उधर से बसें आती हैं तब इधर से नहीं जातीं। कुछ देर इंतजार करने पर रास्ता खुला। रवाना हुए। आगे के प्राकृतिक दृश्य बड़े सुन्दर थे। लक्ष्मण-भूला से कुछ दूर पर गरुड़-चट्टी मिलती है, जहां ऊंचाई से गिरता हुआ एक प्रपात है। उसके जल में कुछ ऐसे रासायनिक तत्व हैं, जिनके कारण बहुत समय तक पानी में पड़ी रहनेवाली वस्तुएं पत्थर की-सी हो जाती हैं।

हम लोग बढ़े जा रहे थे। लगभग १५ मील तक चढ़ाई रही। फिर उतार आया। आश्चर्य होता था रास्ते को देखकर। अजगर की तरह टेढ़ा-मेढ़ा, ऊंचा-नीचा और कहीं-कहीं तो इतना डरावना कि देखकर दिल कांप-कांप उठता ! चारों ओर पहाड़-ही-पहाड़, जिनपर कहीं ऊंचे तो कहीं नीचे हरे-भरे सघन वृक्ष। कहीं-कहीं सीढ़ियोंनुमा खेत और दूर-पास छितरे हुए छोटे-छोटे गांव। प्रकृति की लीला अद्भुत है; लेकिन मानव की करनी भी कम विलक्षण नहीं है। पहाड़ों को काट-काटकर ऐसा रास्ता बना दिया है कि प्रकृति भी अचरज करती है।

व्यासघाट पर संगम के दर्शन हुए। नयार नामक नदी, जिसका पुराणों में 'नवालिका' के नाम से उल्लेख है, यहां गंगाजी में आकर मिलती है। इस छोटे-से संगम पर इंद्रप्रयाग नाम का तीर्थ है। धर्म-ग्रंथों में कथा आती है कि जब देवराज इंद्र वृत्रासुर से संग्राम में परास्त होकर भागे तो यहीं आकर वह शिवजी की आराधना करने लगे। शिवजी ने प्रसन्न होकर उन्हें वरदान दिया, जिसके फल-स्वरूप उन्होंने वृत्रासुर को पराजित किया। तभी से

इस स्थान का नाम इंद्रप्रयाग पड़ा। इस यात्रा में अनेक प्रयाग आते हैं। जहां दो नदियां मिलती हैं, वही प्रयाग कहलाता है। व्यासघाट पर व्यासजी का मंदिर है। कहा जाता है, यहीं पर व्यासजी ने तपस्या की थी। यहां से देवप्रयाग ९ मील है।

रास्ते में हम लोगों की बस थोड़ी-थोड़ी देर के लिए दो-तीन चट्टिटों पर रुकी। वे पड़ाव बहुत छोटे-छोटे थे, लेकिन उन चट्टियों पर खाने-पीने की चीजें अच्छी मिल गईं। ४२ मील का रास्ता चार घंटे में तय हुआ। ११ बजे देवप्रयाग पहुंचे।

देवप्रयाग बड़ा मनोरम स्थान है। अलकनंदा और भागीरथी का संगम है। यहीं से ये दोनों नदियां एक-दूसरी में अपना अस्तित्व ही विलय नहीं करतीं, अपने-अपने नामों का भी त्याग करके 'गंगा' बन जाती हैं।

देवप्रयाग का धार्मिक दृष्टि से बड़ा माहात्म्य है। वह पंच-प्रयागों में से एक है। जनश्रुति के अनुसार सतयुग में देवशर्मा नामक किसी मुनि ने यहां तपस्या की थी। भगवान ने प्रसन्न होकर उनको दर्शन दिये और कहा कि यह स्थान तुम्हारे नाम से ही विख्यात होगा। यहां यात्री पितरों का पिंड-तर्पण करते हैं। काफी बड़ी बस्ती है। तारघर, डाकघर, डाक-बंगला, पुलिस-चौकी, संस्कृत पाठशाला, हायर सेकंडरी स्कूल आदि संस्थाएं हैं। पंडों का तो घर ही समझिये।

हम लोग चाहते थे कि टिकट मिल जाय तो उसी दिन आगे बढ़ जायं और कीर्तिनगर या श्रीनगर में रात बितावें; लेकिन वहां पहुंचकर भीड़-भाड़ देखी तो लगा कि उस दिन आगे जाना संभव नहीं होगा। रात को वहीं ठहरने का निश्चय किया। बाबा काली कमलीवाले की धर्मशाला के बारे में पूछताछ की। बस के अड्डे

से शहर जाने के लिए भागीरथी का पुल पार किया। धर्मशाला जाने के लिए अलकनंदा का पुल पार करना पड़ा। धर्मशाला बस्ती के उस छोर पर है। उसमें सामान रखकर अलकनंदा में स्नान किया। देवप्रयाग की ऊंचाई करीब १७०० फुट होने पर भी गर्मी काफी थी। अलकनंदा के शीतल जल में स्नान करके ताजगी आ गई। भोजन और थोड़ी देर आराम करके शहर में घूमने चले गये। यहांपर तीन पुल हैं। एक अलकनंदा पर, दूसरा भागीरथी पर। ये दोनों पुल पैदल पार किये जाते हैं। आगे चलकर भागीरथी पर एक और पुल है, जिसपर से बसें गुजरती हैं। काफी बड़ा बाजार है यहां। आबादी लगभग ५०००। मकान ऊंचाई-निचाई पर बने होने के कारण बड़े अच्छे लगते हैं। यहां के सबसे बड़े आकर्षण-केंद्र दो हैं। एक तो संगम, दूसरा आदिगुरु शंकराचार्य द्वारा स्थापित श्री रघुनाथजी का मंदिर।

शाम के समय घूमते हुए संगम पर पहुंचे और वहां अच्छी तरह से स्नान किया। पानी का बहाव इतना तेज था कि लोहे की लंबी सांकल पकड़कर बड़ी मुश्किल से गोता लगाया। भागीरथी बड़ी शांत है, पर अलकनंदा की कुछ न पूछिये। वह तो मानो अलख जगाती हुई बहती है। संगम के पास ही ब्रह्मकुंड तथा वसिष्ठ-कुंड है।

देवप्रयाग से एक रास्ता टिहरी को जाता है। टिहरी यहां से ३४ मील है। यहीं से गंगोत्री-यमुनोत्री को अलग रास्ता जाता है।

शाम को रघुनाथजी का मंदिर देखने गये। जगद्गुरु शंकराचार्य द्वारा निर्मित यह मंदिर द्रविड़ शैली का है। इसकी विशेषता यह है कि बिना चूने के जोड़ के पत्थरों से इसे बनाया गया है। इस तथा आगे मिलनेवाले सभी मंदिरों पर दक्षिण का

प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। इस मंदिर में रघुनाथजी की ६ फुट की काले पत्थर की मूर्ति है। मंदिर से संगम तक कोई डेढ़ फर्लांग के फासले में सीढ़ियां बनी हुई हैं। मंदिर के पुजारी महाराष्ट्र भट्ट ब्राह्मण हैं।

आशा थी कि रात को कुछ ठंडक हो जायगी, लेकिन वैसा नहीं हुआ। एक पतली सूती चादर में रात कट गई। सवेरे जल्दी उठे और दो साथियों को टिकिट लाने के लिए बुकिंग आॉफिस भेजा। काफी देर बाद लौटकर उन्होंने बताया कि सात बजेवाली बस नहीं जायगी, क्योंकि शाम को बसें आई ही नहीं। जल्दी-से-जल्दी सवा ग्यारह बजे की बस से हम जा सकेंगे। बड़ा बुरा लगा। सात बजे चलने के विचार से बहुत जल्दी उठे थे और झटपट सारी तैयारियां कर डाली थी। लेकिन अच्छा हुआ, बोझियों को तय करने का समय मिल गया। उन्होंने सारा सामान तोला और बताया कि उसे रुद्रप्रयाग से आगे पैदल किस प्रकार ले जायेंगे। खाने-पीने की व्यवस्था हुई। इस सबमें समय का उपयोग हो गया। ठीक सवा ग्यारह बजे बस मिली। गर्मी के मारे बुरा हाल हो रहा था। सूर्य-देवता अपना प्रताप दिखा रहे थे। अब हमारी बस अलकनंदा के किनारे-किनारे चली। अभी हमें ४६ मील और चलना था। २४ मील श्रीनगर और वहां से २२ मील रुद्रप्रयाग। इधर का रास्ता वास्तव में बड़ा भयंकर है। कहीं-कहीं तो बहुत ही संकरा और कहीं-कहींपर सड़क टूटी हुई। चींटी की चाल से चलकर जब बस उस ऊबड़-खाबड़ रास्ते को पार करती थी तो सारे शरीर में रोमांच हो आता था। ज्यों-ज्यों ऊंचाई पर चढ़ते जाते थे, नदी की सतह नीची होती जाती थी, साथ ही भयावनी भी। लेकिन इसमें संदेह नहीं कि दृश्य एक-से-एक बढ़कर थे। उनमें

इतनी विविधता और वैचित्र्य था कि देखकर मन ऊबता नहीं था, झूमता था। कहीं हरियाली इतनी अधिक थी कि पहाड़ एकदम ढंक जाते थे। कहीं नदी इस प्रकार बल खाती थी कि देखते ही बनती थी। कहीं ऐसा लगता था, जैसे किसी समतल भूमि पर आ गये हों। कुछ लोग पहाड़ी यात्रा के अनभ्यस्त थे। उनके बारे में डर था कि कहीं किसीकी तबीयत खराब न हो जाय, लेकिन भगवान की कृपा से सब ठीक ही रहे।

एक-डेढ़ बजे कीर्तिनगर पहुंचे। कीर्तिनगर बड़ी जगह है। यहांपर अलकनंदा का पुल पैदल पार करना पड़ा। बस का पुल उस समय बन रहा था। पुल तैयार होने पर सामान उतारने और फिर उस पार बसों पर चढ़ाने की मुसीबत बच जाती। कुछ दिन पहले सुना था कि पुल तैयार हो गया था; लेकिन उसमें एक दरार हो जाने के कारण काम में नहीं आया। अब वह ठीक होगया है और उसपर से बसें आती-जाती हैं। नदी पार करके उस ओर पहुंचे। संयोग से श्रीनगर के लिए तत्काल बस मिल गई और तीन मील का रास्ता पार करके तीन बजे के लगभग श्रीनगर पहुंचे। श्रीनगर अच्छा-खासा कस्बा जैसा है। किसी समय संयुक्त गढ़वाल की वहां राजधानी थी। पंवार-वंश के राजा अजयपाल ने सन् १५१७ में इसे अपनी राजधानी बनाया था। लंबा-चौड़ा बाजार है। सन् १८९४ में गोहना ताल के टूट जाने से पुरानी बस्ती बह गई। नई बस्ती बसाई गई। यहां से पौड़ी, कोटद्वार और चमोली तक मोटर का रास्ता गया है। विष्णु, शिव, लक्ष्मी, नारायण तथा कंसमर्दिनी के प्राचीन मंदिर हैं। कहते हैं, रामचंद्र ने रावणवध के पाप से मुक्त होने के लिए यहीं एक हजार कमल रोज चढ़ाकर भगवान शंकर की आराधना की थी। तबसे कमलेश्वर महादेव

का विशाल मंदिर भी यहां विद्यमान है।

कला-कौशल और समृद्धि की दृष्टि से श्रीनगर का भाग्य किसी जमाने में खूब चमका; लेकिन अंग्रेजी शासन के स्थापित होने पर जब गढ़वाल का राजवंश टिहरी बसने चला गया तो श्रीनगर का सूर्यास्त हो गया। अधिक ठंडी जगह होने के कारण अंग्रेजों ने पौड़ी को आबाद किया।

श्रीनगर में यात्रियों की भीड़ बेशुमार थी। कुछ तो उनके और कुछ बस-अधिकारियों की अव्यवस्था के कारण आगे के लिए बस मिलने में काफी दिक्कत हुई और देर भी लगी। सवा चार बजे चले। इक्कीस मील का रास्ता तय करना अभी बाकी था। हम चाहते थे कि दिन छिपने से पहले ही रुद्रप्रयाग पहुंच जायं। संयोग से वही हुआ। इधर का रास्ता उतना बुरा नहीं था, इसलिए बस मजे की रफ्तार से चली। रास्ते में जगह-जगह पहाड़ों पर से धुंआ उठता हुआ दिखाई दिया। चीड़ के पेड़ भी इधर काफी मिले। यह बस का आखिरी सफर था। अब आगे पैदल चलने की बारी आनेवाली थी। हमारी टोली खूब खुश थी।

सात बजे के लगभग रुद्रप्रयाग पहुंचे। कई बसों के एक साथ पहुंचने के कारण अड्डे पर मेला-सा लग गया। झटपट बस से उतरे। बोझियों ने सामान उतारा और संभाला। इस बीच हम तीन जने ठहरने की व्यवस्था करने के लिए तेजी से आगे बढ़े। बस का अड्डा नदी के इस पार है, बस्ती उस पार। पुल पार करके उस ओर पहुंचे और बाबा काली कमलीवाले की धर्मशाला खोजी। बस्ती के बिल्कुल छोर पर मिली। चौकीदार ने बताया कि धर्मशाला में पैर रखने को भी जगह नहीं है। बीसियों यात्री हैरान होकर इधर-उधर घूम रहे थे। जैसे-तैसे चौकीदार ने एक कमरे

की व्यवस्था की, लेकिन कमरा इतना छोटा था कि हमारी पूरी टोली उसमें नहीं समा सकती थी। दूसरे स्थान की तलाश की। बड़ी कठिनाई से रुद्रनाथ के मंदिर के ऊपर एक कमरा और मिल गया। हम लोगों में से कुछ काली कमलीवाले की धर्मशाला में ठहरे और कुछ मंदिरवाले कमरे में।

रुद्रप्रयाग का पुराना नाम पुनाड था। उसकी ऊंचाई २००० फुट है। यहां भी खासी गर्मी थी। यह स्थान देवप्रयाग से भी अधिक शोभा-युक्त है। मंदाकिनी और अलकनंदा का संगम है। यह भी पंच प्रयागों में से है। यहां से एक रास्ता अलकनंदा के पुल को पार करके मंदाकिनी के किनारे-किनारे उत्तर की ओर केदारनाथ को जाता है, दूसरा अलकनंदा के किनारे-किनारे उत्तर-पूर्व की ओर बदरीनाथ को।

राहुलजी ने अपनी पुस्तक में इस स्थान का वर्णन करते हुए यहां के बाबा सच्चिदानंद की बड़ी प्रशंसा की थी। सामान जमा-कर जब उन विद्वान साधु का पता लगाया तो मालूम हुआ कि विगत आषाढ़ में वह गोलोकवासी हो गये और अब उनके शिष्य स्वामी कृष्णानंदजी अपने गुरु की परंपरा को आगे बढ़ा रहे हैं। यहां संस्कृत विद्यालय है, कालिज और अस्पताल है। संगम के किनारे रुद्रनाथजी का मंदिर है। तारघर, टेलीफोन, डाकघर आदि की भी व्यवस्था है।

रात को स्वामी कृष्णानंदजी मिले। बहुत देर तक बातचीत होती रही। उन्होंने बताया कि यहां शिक्षा का अच्छा केंद्र है। संस्कृत के एक विद्वान की उन्होंने आवश्यकता जतलाई।

बाजार के निकट २१४ फुट लंबा लोहे का पुल है, जिससे अलकनंदा को पार किया जाता है। इस नदी का यहां भी बड़ा

तूफानी रूप है, पर मंदाकिनी बेचारी पहले जैसी ही शांत और गंभीर है। संगम पर बड़ा कोलाहल रहता है। पानी का प्रवाह बहुत ही तेज है।

बाजार में भोजन किया। पूड़ियां अचार से खाईं। साग में बेहद मिर्चें थीं। भोजन से छुट्टी पाकर अगले दिन की पैदल-यात्रा की तैयारी की। निश्चय किया कि सवेरे पांच बजे निकल पड़ेंगे, जिससे धूप होने से पहले ही अधिक-से-अधिक रास्ता तय कर लें।

: ६ :

पैदल-यात्रा का प्रारंभ

रात को नींद बहुत कम आई। सबेरे जल्दी उठकर चलना चाहते थे, इसलिए बार-बार आंख खुल जाती थी कि कहीं देर तक सोते न रह जायं। उधर अलकनंदा का अनवरत नाद नींद में खलल डालता रहा। साथ ही थोड़ी-सी परेशानी बोझियों की ओर से भी हो रही थी। हमने सारा सामान देवप्रयाग में तुलवाकर वहीं से चार बोझी साथ ले लिये थे। अस्सी रुपये मन के हिसाब से पर्ची भी कटवा ली थी; लेकिन बोझियों का अंदाज था कि जितने वजन की पर्ची कटी है, सामान उससे कुछ ज्यादा है। इससे वे जाने से आनाकानी करने लगे। उनका मेट वीर बहादुर बड़ा भला था। असल बात यह थी कि बोझी उसके नियंत्रण में नहीं थे। जो हो, बोझियों की परेशानी से बचने के लिए रात को ही एक और बोझी तय कर लिया। बालक विजय को उठाने के लिए एक कण्डी कर ली गई थी; लेकिन सोते समय मेट ने बताया कि कण्डी नहीं है और वह बालक को पीठ पर कपड़े से बांधकर ले जायगा।

सबेरे चार बजे उठे। आकाश में तारे बिछे थे। चारों ओर अंधकार फैला था। निवृत्त हुए और दर्जनों सीढ़ियां पार करके जब संगम में हाथ-मुंह धोने पहुंचे तो वहां के दृश्य को देखकर मन सिहर उठा। अधिकांश यात्री उठ गये थे और चलने की जल्दी में थे। रात्रि की नीरवता को भंग करता हुआ उनका कोलाहल अलकनंदा और मंदाकिनी के स्वर को और भी प्रखर बना रहा

था। बीसियों यात्री संगम में नहा रहे थे। पानी इतना ठंडा था कि छूते ही फुरफुरी आती थी। यात्रियों को उसी शीतल जल में स्नान करते देखकर मन में विचार आया, श्रद्धा बहुत बड़ी चीज है। वही तो दुर्बल तथा क्षीणकाय व्यक्तियों तक को जाने कहां-कहां से खींचकर इस दुर्गम यात्रा पर आने का साहस और बल प्रदान करती है।

डेरे पर लौटकर हम लोगों ने अपने साथ ले जानेवाला सामान अलग किया। झोले में मौके-बेमौके के लिए अमृतधारा आदि औषधियां रखीं; मिश्री, लौंग, इलायची डालीं; गिलास और तौलिया रखा; कुछ कागज, डायरी और एक-दो किताबें। झोले के अतिरिक्त पानी की बोतल, कैमरा, लाठी आदि लिये। चप्पलों को छुट्टी दी, केन्वास का जूता पहना। यह सब सामान अलग करके बिस्तर बांध दिये। सामान बोझियों को सौंपा और हम लोग जलपान करने गये। हमें बताया गया था कि इस यात्रा में चाय का प्रयोग अधिक-से-अधिक करना चाहिए। कच्चा पानी कम पीना चाहिए। एक गिलास चाय ली, कुछ बिस्कुट खाये। सारी टोली चलने को तैयार हो गई। ५.२५ पर रवाना हुए। उससे पहले काफी यात्री जा चुके थे।

पूछताछ करने पर मालूम हुआ था कि केदारनाथ की यात्रा बड़ी कठिन है, बदरीनाथ की अपेक्षाकृत सरल है। हम लोग दिल्ली से यह सोचकर चले थे कि पहले बदरीनाथ जायंगे और उस यात्रा से यदि शक्ति बची तो केदारनाथ भी हो आवेंगे। लेकिन बाद में इरादा बदल गया। टोली की राय हुई कि पहले कठिन यात्रा कर लेनी चाहिए, जिससे आसान यात्रा के लिए प्रेरणा और साहस बना रहे। यही सोचकर हम पहले केदारनाथ की ओर चले।

रुद्रप्रयाग पर अलकनंदा से विछोह हो गया। देवप्रयाग से वह बराबर साथ रहकर हम लोगों का मनोरंजन करती आई थी। अब मंदाकिनी की बारी थी। उसीके किनारे-किनारे टोली आगे बढ़ी। पैदल चलने में वैसे ही बड़ा आनंद आता है, हड़बड़ाहट नहीं होती, शांति के साथ कदम आगे बढ़ते जाते हैं; पर यहां तो मन यह सोचकर और भी प्रसन्न हो रहा था कि हम लोग एक बड़ी यात्रा करने जा रहे थे।

हरेक के कंधे पर एक-एक झोला और पानी की बोतल थी, हाथ में लाठी। मजे-मजे में आगे बढ़े। यात्रियों के कंठों से निकले 'केदारनाथ की जय' 'बदरी-विशाल की जय' आदि के उद्घोष से सारा वायुमंडल बीच-बीच में गूंज उठता था। हम लोग भी जब-तब उस स्वर में अपना स्वर मिला देते थे। कभी-कभी भक्ति के गीत सुन पड़ते थे। आज की यात्रा में हमें ११ मील चलकर अगस्त्य मुनि-चट्टी पर पड़ाव डालना था।

दिन का प्रकाश फूटा। ऐसा प्रतीत हुआ, सामने कोई नई दुनिया है और नये जीवन का उदय हुआ है। आगे-पीछे, इधर-उधर, चारों ओर पर्वतमालाएं थीं, जिनके बीच पुण्य-सलिला मंदाकिनी मंथर गति से बह रही थी। पर्वत की हरियाली मन पर जादू कर रही थी। मौसम बड़ा सुहावना था। लाठी टेकते-टेकते हम लोग नये लोक में, अपरिचित पथ पर, आगे बढ़ते जा रहे थे।

कुछ दूर निकलने पर और बहुत-से यात्री साथ हो गये। सब एक ही पथ के राही थे। कई-एक से परिचय हो गया। उस विशाल यात्री-दल में बिहार, राजस्थान, गुजरात, दक्षिण, बंगाल आदि अनेक प्रदेशों के यात्री थे। महिलाएं और बच्चे भी थे। बड़े उल्लास के साथ सब बढ़ते जा रहे थे, बढ़ते जा रहे थे।

पांच मील पर पहली चट्टी आई छतौली। सुदर जगह थी। हमने चलते समय निश्चय किया था कि कोई तेज चले या धीमे, लेकिन छतौली पर सब इकट्ठे हो जायं तब आगे बढ़ें। पहले पहुंचकर हम लोग वहां रुक गये और टोली के शेष लोगों के आने की राह देखने लगे। इन यात्राओं में चट्टियां बहुत बड़ा वरदान हैं। चट्टी पड़ाव को कहते हैं। यात्रियों के ठहरने के लिए वहां कुछ मकान और खाने-पीने के सामान के लिए कुछ दुकानें होती हैं। इधर की यात्रा में दो-दो, तीन-तीन मील पर चट्टियां हैं। इन चट्टियों में यात्री ठहरकर खाना-पीना करते हैं और थक जाने पर रात को ठहर जाते हैं। यदि ये चट्टियां न होती तो बिरले ही इन यात्राओं को कर पाते। रुद्रप्रयाग से केदारनाथ ४८ मील है। बिना रुके भला इतनी लंबी और कठिन चढ़ाई की यात्रा कोई कैसे कर सकता है ?

छतौली चट्टी पर हम सब इकट्ठे हुए। कैमरा निकालकर टोली का चित्र खींचा। इस चट्टी पर दूध मिल गया, पिया, नाश्ता किया और आगे बढ़े। पहाड़ी यात्रा में, कुछ तो पैदल चलने और कुछ जलवायु अच्छी होने के कारण, भूख खूब लगती है। किन्तु यात्रियों को चाहिए कि वे खाने में असंयम न करें, नही तो तबीयत खराब होने का डर रहता है। दूसरे, यात्रा में प्यास बहुत लगती है। अपने पास पानी की व्यवस्था रखनी चाहिए। यदि अपने पास पानी न हो तो म्यूनिसपालिटी के नल से ही पानी लेना चाहिए। अगर नल न हों तो झरने के पानी को थोड़ी देर रखकर और छान-कर पीना चाहिए। पानी में पत्थर के छोटे-छोटे कण होते हैं, जो पेट को नुकसान पहुंचाते हैं। हमें यह बात पहले से ही मालूम थी। इसलिए हमारी टोली के प्रत्येक यात्री के कंधे पर पानी की एक-

एक बोतल थी।

छतौली के बाद एक मील पर तिलवाड़ा और वहां से दो मील पर रामपुर चट्टी आई। आगे के लिए बस की सड़क तैयार हो रही है, इसलिए काम करते हुए बहुत-से मजदूर यहां मिले। वे बड़े परिश्रम से चट्टानें तोड़कर रास्ता बना रहे थे। कहीं-कहीं पर सुरंग लगाकर पत्थर उड़ा रहे थे। पत्थर उड़ाने में बहुत-से मजदूरों के चोट आ जाती है। एक का पैर सूजा था। हमें देखकर उसने दवा मांगी। विष्णुभाई ने अपना थैला खोलकर उसके पैर पर टिंचर लगाया। आगे चलकर मालूम हुआ कि सुरंग से एक मजदूर का सारा शरीर लहूलुहान हो गया। काफी चोट आई थी। पता नहीं, बचा होगा या नहीं। जहां-जहां काम लगा है, वहां समुचित दवा-दारू की व्यवस्था अवश्य रहनी चाहिए।

रामपुर पहुंचते-पहुंचते धूप बहुत तेज हो गई, इतनी कि जी हैरान होने लगा। अनभ्यस्त होने के कारण जूते पैरों को काटने और परेशान करने लगे, पर सिवा आगे बढ़ने के कोई चारा न था। सोचा कि रामपुर में रुककर बाकी के लोगों को आ जाने दें। लेकिन फिर विचार आया कि आखिर अगस्त्यमुनि-चट्टी तो पहुंचना ही है। रुकने से पैर और भी हैरान करेंगे। अतः चलते चलें। अभी चार मील और चलना था।

मंदाकिनी साथ थी। वह भांति-भांति की दृश्यावली से हम लोगों का मन हरने का पहले की भांति प्रयत्न कर रही थी, लेकिन धूप के मारे बेहाल यात्री तो बस यह चाह रहे थे कि कैसे ही जल्दी-से-जल्दी पड़ाव पर पहुंचें और आराम करें।

: ७ :

अगस्त्यमुनि-चट्टी

अगस्त्यमुनि-चट्टी पहुंचे उस समय ११ बजे थे। जान-में-जान आई। बाबा काली कमलीवाले की धर्मशाला के एक बरामदे में डेरा डाला। चट्टी बड़ी है। डाकखाना, कालेज, आदि हैं। धार्मिक दृष्टि से उसका बड़ा महत्व है। कहते हैं, अगस्त्यमुनि ने यहां तपस्या की थी। इसलिए इस चट्टी का यह नाम पड़ा। अगस्त्यमुनि का मंदिर है, जिसमें गढ़वाली राजाओं द्वारा चढ़ाये गए गांवों की आमदनी से पास में ही बसे बेंजी गांव के पुजारी नित्य पूजा करते हैं। इस मंदिर में अगस्त्यमुनि की दो भुजावाली धातु की मूर्ति है। बहुत सुन्दर नहीं है, लेकिन मंदिर के बाहर दाहिनी ओर को हरगौरी की मूर्ति बड़ी आकर्षक है। पास में दो मंदिर और हैं—विष्णु और विन्ध्याचल के। निकट ही एक लंबा-चौड़ा मैदान है, जिसमें हवाई जहाज का अड्डा बनाने का प्रस्ताव बहुत दिनों से हो रहा ह।

टोली के शेष लोग धीरे-धीरे चलकर १२ बजे तक पहुंचे। केवल एक सज्जन रह गये। वह थे चिरंजीलालजी। शरीर भारी होने के कारण उनके लिए सारी मंजिल पैदल चलना कठिन हो गया। उन्हें टट्टू करना पड़ा।

इस यात्रा में डांडी, टट्टू, कंडी मिल जाते हैं। डांडी में चार आदमी लगते हैं और उसमें यात्री बड़े आराम से जाते हैं। कंडी बेंत की कुर्सीनुमा होती है, जिसे बोझी पीठ पर लादकर ले

जाते हैं। यात्री इस कुर्सी पर बैठ जाते हैं और पैर बाहर को लटका देते हैं। इसमें एक दिक्कत यह रहती है कि जिधर को चलते हैं, यात्री की उधर पीठ होती है और मुंह ठीक विपरीत दिशा में। वैसे आराम की चीज है। डांडी सारी यात्रा के लिए लगभग ४००) में मिलती है। कंडी और टट्टू एक रुपया-सवा रुपया मील के हिसाब से।

टोली के सब लोग इकट्ठे हो गये। भोजन का डौल जमा। काली कमलीवाले के यहां से बर्तन और सामान लेकर खिचड़ी बनाई, कुछ रोटियां पकाईं। उसके बाद मंदाकिनी में जाकर कपड़े धोये, स्नान किया। शरीर फिर ताजा हो गया। लौटकर भोजन किया। थोड़ी देर सोये। शाम होने से पहले ही बहुत-से यात्री पुनः चल पड़े। पर हम लोगों ने रात को वहीं ठहरने और बड़े तड़के निकल पड़ने का निश्चय कर लिया था।

पैदल-यात्रा का आज पहला दिन था। थक गये थे, लेकिन आंख मूंदने पर रास्ते के दृश्य ऐसे चक्कर लगाते थे मानो हम कोई सिनेमा देख रहे हों। कई दृश्य तो वास्तव में बेजोड़ थे। हिमालय की हिमाच्छादित चोटी हम लोगों का मार्ग-दर्शन कर रही थी। कई जगह रस्सी के पुल मिले, जिन्हें लोग नदी-पार गांव में जाने के लिए अस्थायी रूप से तैयार कर लेते हैं। इन पुलों पर चलने में अनभ्यस्त यात्रियों का तो दिल कांप उठता है, लेकिन उधर के लोग खटाखट इस तरह पार कर जाते हैं, मानों पक्की सड़क पर चल रहे हों।

शाम को दिन छिपने से पहले घूमने निकले। मंदिर देखे, नदी के किनारे घूमे और बस्ती में चक्कर लगाया। एक युवक हमारे साथ हो गया। बड़ा भला और होशियार था। उसने बताया कि

अब वहां बस्ती काफी बढ़ गई है और पढ़ाई के लिए अच्छे स्कूल की व्यवस्था हो गई है। बहुत-से लड़के स्कूल में पढ़ने आ जाते हैं। लेकिन अगर सड़क पक्की हो जाय, बसें चलने लगें और हवाई अड्डा चालू हो जाय तो इस स्थान की और भी उन्नति हो जायगी। कहने को जी हुआ कि तब वह अगस्त्य-मुनि का तीर्थ नहीं रहेगा, व्यापार का अड्डा बन जायगा, पर कुछ सोचकर चुप रह गये। अब मालूम हुआ है कि उधर सड़क तैयार हो गई है और बसें उस चट्टी से भी आगे तक आने-जाने लगी हैं। पता नहीं, चट्टी के रूप में क्या परिवर्तन हुआ होगा।

उस युवक ने यह भी बताया कि नदी-पार दो मील पर शिल्ला गांव में दो विशाल तथा कुछ सामान्य मंदिर हैं।

धीरे-धीरे संध्या का अंधकार फैलने लगा और बस्ती निस्तब्ध होने लगी। हम लोग अपने डेरे पर लौटे। दूध पिया, प्रार्थना की और सवेरे जल्दी उठने का संकल्प करके सो गये।

: ८ :

पैर थके, पर रुके नहीं

सवेरे ३।। बजे उठे। नित्यकर्म से छुट्टी पाई और सामान बांधकर ४.४५ पर रवाना हुए। आज का पड़ाव ज़रा लंबा था। १३ मील चलकर गुप्तकाशी में रात बितानी थी। लोगों ने कहा था कि आज का रास्ता बड़े कसाले का है। आखिरी दो मील की चढ़ाई तो बहुत ही मुश्किल है। सुनकर थोड़ी हैरानी हुई, लेकिन बढ़े कदम अब लौटनेवाले कहां थे।

२।। मील पर छोटी-सी सौड़ी चट्टी आई, जहां से ५ मील पर कीर्तिकेय का बड़ा सुन्दर मंदिर है, पर रास्ता कुछ हटकर है।

मंदाकिनी ने आगे ऐसे-ऐसे सुंदर दृश्यों का निर्माण किया है कि उनका वर्णन शब्दों में करना कठिन है। पर्वतों के योग से नदी का रूप क्षण-क्षण पर बदलता रहता है। कहीं नव-यौवना की भांति वह उछल-कूद करती है तो कहीं प्रौढ़ा की भांति धीर-गंभीर हो उठती है। इधर की वनश्री तो बहुत ही मनोरम है। ऐसा प्रतीत होता है, जैसे किसी चितेरे की कुशल तूलिका ने उस अलौकिक जगत की सृष्टि की है और वहां जो दीख पड़ता है, वह पार्थिव जगत की वस्तु नहीं है।

सौड़ी से ३ मील पर चंद्रापुरी चट्टी आई। बड़ा पड़ाव है। यहां सब आवश्यक वस्तुएं मिल जाती हैं। चंद्रशेखर महादेव और दुर्गा के मंदिर हैं। मंदाकिनी और चंद्रा नदियों का संगम है।

चंद्रापुरी से तीन मील पर पूल से मंदाकिनी को पार किया।

पुल लोहे का और खासा लंबा है। उसे पार करते समय नीचे देखने में रोमांच हो आता है। नदी के उस पार भीरी चट्टी है। इस किनारे बस की सड़क तैयार हो रही है। इसीलिए मंदाकिनी को पार करके उस ओर के तट पर चलना पड़ता है। भीरी चट्टी नदी के दोनों तटों पर बसी हुई है। यहां की उपत्यकाएं बहुत सुन्दर हैं। सामने पर्वतराज हिमालय के धवल शृंग, दोनों पार्श्व में हरे-भरे वृक्षों से सुशोभित पर्वत। प्रकृति वास्तव में बड़ी उदार है; लेकिन सच बात यह है कि प्रकृति की यह उदारता यात्रियों को बड़ी भारी पड़ती है। कहीं-कहीं रास्ता इतना भयावना है कि पैर डगमगाने लगते हैं। कहीं-कहीं बेहद संकरा। यह सब होते हुए भी हजारों श्रद्धालु नर-नारी आगे बढ़े जाते हैं। दुनिया पीछे छूट जाती है, पर उसका मलाल नहीं होता। नये लोक से नाता जुड़ जाता है। लगता है, अपने चारों ओर जो है, उसमें गहरी आत्मीयता है। यही आत्मीयता यात्रियों के दिल को ऊंचा उठाती है और उसे एक अनिर्वचनीय उमंग से भर देती है। मंदाकिनी में दिल का कलुष बह जाता है। भीरी में डाकघर है। कहते हैं, वहांपर भीमसेन का देवालय होने के कारण उसका यह नाम पड़ा। भीमसेन की मूर्ति सुंदर नहीं है। उसके निकट विष्णु की प्राचीन मूर्ति है।

भीरी से ३॥ मील चलने पर मंदाकिनी के दाहिने तट पर कुण्डचट्टी आई। यहां से गुप्तकाशी, जहां हमारी टोली को रात को ठहरना था, कुल २ मील रह गई थी, लेकिन यही चढ़ाई थी, जो खून-पसीना एक कर देनेवाली थी। कुण्डचट्टी कोई १० बजे पहुंचा। आकाश साफ था। सूर्य पूरी तेजी से चमक रहा था। शरीर से पसीना चू रहा था। थकान के मारे बुरा हाल हो रहा

था। पहाड़ों की धूप बड़ी परेशान करनेवाली होती है। थोड़ी देर धूप में चलने पर यात्री पस्त हो जाता है। इसलिए उधर जानेवाले यात्रियों को इस बात की सावधानी रखनी चाहिए कि खूब सवेरे उठकर चल दें और जैसे ही धूप में तेजी आवे, पड़ाव डाल दें। शाम को धूप की तेजी कम होने पर फिर चल सकते हैं।

एक तो धूप तेज, दूसरे जूते पैर काट रहे थे। दोनों पैरों की उंगलियों में छाले पड़ गये थे। एक-एक कदम उठाना भारी हो रहा था। सोचा, कुण्डचट्टी पर ठहर जायं और शाम को गुप्तकाशी पहुंचें, लेकिन पंडे के आदमी को गुप्तकाशी रुकने की सूचना होने से वह आगे निकल गया था। कुण्डचट्टी में रुककर थोड़ी देर सुस्ताया, पसीना सुखाया और आगे बढ़ने की हिम्मत की। टोली के लोग पीछे छूट गये थे।

आगे की खड़ी चढ़ाई देखकर दिल बैठ-बैठ जाता था। जूते हैरान कर रहे थे, सो उतार डाले, किंतु धरती इतनी तप रही थी कि पैर जलने लगे। रास्ते में पेड़ का नामोनिशान भी नहीं था। चढ़ाई शुरू होते ही एक टट्टूवाला पीछे पड़ा था। कहता था, "बाबूजी, बड़ी कड़ी चढ़ाई है। मेरा कहना मानिये। टट्टू ले लीजिये।" मेरा इरादा था कि जहांतक बन पड़ेगा, सवारी नहीं लूंगा, पैदल ही चलूंगा। फिर मुझे यह भी लगा कि टट्टूवाला अपनी आमदनी के विचार से इतना आग्रह कर रहा है। टट्टू नहीं लिया। बाद में पता चला कि टट्टूवाले के आग्रह में कोरा स्वार्थ नहीं था। चढ़ाई सचमुच बड़ी कठिन थी। साथ में कुछ और भी यात्री थे। थकान और धूप के मारे सब बेहाल हो रहे थे। एक बार तो मुझे ऐसा लगा कि अब आगे नहीं बढ़ा जायगा, तभी

देखता क्या हूं कि तीन-चार वर्ष की एक नन्हीं-सी बालिका अपने पिता की उंगली पकड़े ऊपर चढ़ी चली जा रही है। उसे देखकर साहस लौट आया, पैर स्फूर्ति से भर उठे। आगे बढ़ा। सामने पर्वत की हिम-मंडित चोटियां दिखाई देती थीं, जैसे बुला रही हों। वृक्ष-हीन होने के कारण मार्ग रेतीला था। पैर जलने लगे तो फिर जूते पहन लिये।

कुछ कदम आगे बढ़ने पर एक डांडी आई, जिसमें एक लहू-लुहान स्त्री बेहोश-सी पड़ी थी। उसके कपड़े खून से लथपथ हो रहे थे। वह छत से गिर पड़ी थी और उसकी सारी देह फूट गई थी। उसकी अवस्था देखकर डांडीवालों को दया आ गई। वे उसे गुप्तकाशी ले जा रहे थे, जहां चिकित्सा की व्यवस्था थी। स्त्री की हालत देखकर दिल को बड़ी चोट लगी। यों तो सावधानी से रहने और चलने की सभी जगह जरूरत है, लेकिन पहाड़ों पर तो सजग रहना और भी आवश्यक है। ज़रा से चूकने पर जान संकट में पड़ सकती है। बार-बार खयाल होता था कि स्त्री के इतनी चोट लगी है, इतना लहू बहा है, क्या वह बच पायेगी!

ऊपर, दूर ऊंचाई पर, चलते हुए यात्री खिलौने जैसे लगते थे। ओह, वहीं तो हमें भी पहुंचना है! कैसे पहुंचेंगे? टोली की महिलाओं का क्या होगा? स्थूलकाय यात्री कैसे इस चढ़ाई को चढ़ते होंगे? बहुत-से विचार आते गये और पैर धीरे-धीरे आगे बढ़ते गये। सूर्य के प्रखर प्रकाश में चमकती हुई धवल पर्वत-मालाएं मुस्करा रही थीं। थके पांवों को प्रेरणा देती हुई जैसे कह रही हों, "ओ बटोही, अभी तो मंजिल दूर है। यों हारोगे तो कैसे काम चलेगा!"

: ६ :

गुप्तकाशी में

जैसे-तैसे डेढ़ मील की वह चढ़ाई पूरी हुई। १२।। बजे के लगभग गुप्तकाशी पहुंचा। कालीकमलीवाले की धर्मशाला का पता लगाकर अंदर गया तो हमारे पंडे के आदमी ने बताया कि भीड़ अधिक होने की वजह से जगह बहुत कम है। चौकीदार से आग्रह करने पर बड़ी मुश्किल से एक छोटा-सा कमरा पूरा और आगे आधा वरांडा मिला। आधे वरांडे में कुछ और लोग ठहरे हुए थे। सब मिलकर बैठे और बात होने लगी तो उन्होंने बताया कि वे गंगोत्री, यमुनोत्री तथा केदारनाथ के दर्शन कर आये हैं और अब बदरीनाथ जा रहे हैं। बहुत-से सवाल करके उनसे आगे के मार्ग की जानकारी प्राप्त की।

धीरे-धीरे करके टोली के लोग आ गये। आखिरी लोग ४।। बजे पहुंचे। धूप में चलने और थकान के कारण हीरालालजी की बड़ी लड़की शांता और चम्पाबहन की तबीयत खराब हो गई। शांताबहन तो बहुत घबराने लगीं। संयोग से वहां शफाखाना था। डाक्टर को बुलाया। उसने स्टेथसकोप लगाकर दिल की जांच की और ऐसे सवाल किये, कि जिनसे घबराहट बढ़ गई। "पहले कभी इनकी ऐसी हालत हुई है ? दिल का कभी दौरा हुआ है ?" आदि-आदि। मैंने कहा, "आप बिना बात इतने सवाल कर रहे हैं। गरमी से इनका पित्त भड़क गया है। अभी ठीक हो जायंगी।" डाक्टर के जाने पर हम लोगों ने उनके सिर

तथा हाथ-पैर की तेल से खूब मालिश की। थोड़ी देर में वह स्वस्थ हो गईं।

अब हम चार हजार फुट की ऊंचाई पर थे। गुप्तकाशी काफी बड़ी चट्टी है और उसकी बड़ी मानता है। केदारनाथ के पंडे यहींपर मिलते हैं। डाकघर, टेलीफोन, औषधालय आदि हैं। बाजार है, जिसमें खाने-पीने की चीजें ही नहीं, कपड़ा, लालटेन, शीशा, टार्च आदि भी मिल जाते हैं।

यहां का विशाल शिव-मंदिर यात्रियों के लिए विशेष आकर्षण का केंद्र है। उसमें विश्वनाथ का शिव-लिंग है। दूसरे मंदिर में पांडवों की मूर्तियां हैं। उसी प्रांगण में अर्द्धनारीश्वर का मंदिर है, जिसकी मूर्त्ति बड़ी सुंदर और भावपूर्ण है। यहां के मंदिर केदारनाथ के रावल के अधीन हैं।

केदारखंड में इस स्थान का नाम 'गुह्य वाराणसी' है। शिव-मंदिर के सामने 'मणिकर्णिका' नामक कुंड है, जिसमें गोमुखी में होकर दो जल-धाराएं गिरती हैं। लोगों का कहना है कि ये दोनों गंगा-यमुना की धाराएं हैं, जो सीधी गंगोत्री-यमुनोत्री से आती हैं।

एक बात बड़ी अखरी। अबतक के हर पड़ाव पर नदी पास ही होती थी, जिसमें स्नान करने पर थकान बहुत-कुछ दूर हो जाती थी; लेकिन यहां नदी काफी फासले पर और निचाई पर थी। इसलिए कुंड के पानी में स्नान करना पड़ा। बाहर नल पर कपड़े धोये। बंगालियों की एक टोली भी उधर की यात्रा कर रही थी। उनमें कोई सौ स्त्री-पुरुष थे। उनकी सारी व्यवस्था कलकत्ता की कुंडू कंपनी ने की थी। हम लोगों ने उस टोली का नाम 'कुंडू-पार्टी' रख छोड़ा था। जहां-कहीं वह ठहरती थी, वहीं

दूसरे यात्रियों के लिए स्थान की तंगी हो जाती थी। चीजों के दामों में भी अंतर पड़ जाता था। खाने-पीने की चीजें तो बहुत ही महंगी हो जाती थीं। वे लोग बड़े आनंद से यात्रा कर रहे थे। पड़ाव पर पहुंचते ही कढ़ाई चढ़ जाती थी और पूड़ियां तथा मिठाइयां तैयार होती थीं। दावत उड़ती थी।

भोजन करके बाजार में घूमने चले गए। किताबों की एक दुकान पर से यात्रा-संबंधी पुस्तकें-नक्शे आदि लिये। स्थान बड़ा मनोरम है। कहते हैं, पूर्वकाल में यहीं पर ऋषियों ने शंकर की आराधना की थी।

रात को यह सोचकर सोये कि सवेरे जल्दी उठेंगे। लेकिन रात-भर प्रह्लाद को तेज बुखार रहा। बराबर कराहते रहे। सवेरे उठे तो देखा कि बुखार उतरा नहीं है। तय किया कि सब लोग आराम करें और दोपहर बाद वहां से चलें। डाक्टर को बुलाकर उन्हें दिखाया तो उसने कहा कि चिंता की कोई बात नहीं है। दवा दे दी। दवा लेने के बाद प्रह्लाद को दस्त आने लगे। कई बार शौच गये। नई परेशानी हो गई।

गुप्तकाशी में पण्डों की भरमार है। वे यात्रियों को बहुत ही हैरान करते हैं। हाथों में लंबी बहिया लेकर हर यात्री से उसका नाम और ठौर-ठिकाना पूछते हैं। इतने पीछे पड़ते हैं कि लोग तंग आ जाते हैं। हमें भी कई पण्डों ने घेर लिया। उन्हें भगाने की कोशिश की, लेकिन वे कहां माननेवाले थे। आखिर हम लोगों के नाम-पते लिखकर ही टले।

दोपहर को अचानक बादल घिर आये और पानी पड़ने लगा। डर हुआ कि बारिश जम गई तो आगे जाना मुश्किल हो जायगा। पर थोड़ी ही देर में पानी थम गया और स्नान-भोज-

नादि से छुट्टी पाकर १ बजे के लगभग हमारी टोली रवाना हो गई। कहने की आवश्यकता नहीं कि कड़ी चढ़ाई के कारण अधिकांश व्यक्तियों ने टट्टू ले लिये थे और अब चूंकि केदारनाथ तक चढ़ाई-ही-चढ़ाई थी, इसलिए टट्टुओं का स्थायी प्रबंध कर लिया गया था। इधर टट्टू बारह आने से लेकर सवा रुपया फ़ी मील के हिसाब से मिल जाते हैं।

: १० :

फाटा-चट्टी पर

गुप्तकाशी में एक मजेदार बात हुई। पिछले दिन सबसे पीछे चिरंजीलालजी पहुंचे थे। हालांकि वह टट्टू पर थे, फिर भी हैरान होगये थे। टट्टू से उतरने लगे तो एक भगवा वस्त्रधारी साधु ने झट आगे बढ़कर उनके उतरने में मदद की। चिरंजीलाल-जी उससे इतने प्रभावित हुए कि बाद में मुझसे कहने लगे, "यशपालजी, इस साधू ने मेरी इतनी सच्चे दिल से मदद की कि अपना लड़का भी क्या करेगा!" मैंने कहा, "भाईजी, यह परदेश है। ज़रा सावधान रहने की जरूरत है।" शाम को भोजन करने बैठे तो देखते हैं कि वह साधु महाराज बर्तन लेकर मौजूद हैं। हमारे साथ उन्होंने भी खाना खाया। हम लोगों के केमरों को देखकर वह बोले, "मुझे भी एक केमरा चाहिए। हमें लगा कि कहीं हमारी टोली का कोई केमरा न उड़ जाय। अगले दिन के भोजन में भी वह महाराज अपने-आप शामिल हो गये और जब हमारी टोली रवाना हुई तो वह भी साथ-साथ चल पड़े। हमने सबको सावधान रहने की हिदायत की, फिर भी रह-रहकर मन उन साधु की ओर से सशंकित रहा।

डेढ़ मील चलने पर नालाचट्टी आई। कहा जाता है कि इस स्थान पर राजा नल ने भगवान की आराधना की थी। यहां भगवती 'ललितादेवी' का मंदिर है। एक पत्थर का स्तूप है, जो कि कुमाऊं-गढ़वाल का एकमात्र बौद्ध स्तूप है। मंदिर में कुछ अन्य

मूर्त्तियां भी हैं।

यहीं से एक रास्ता ऊखीमठ होकर चमोली को जाता है। रास्ते पर एक पत्थर लगा था, जिसपर लिखा था—चमोली ३० मील, तुंगनाथ १७ मील, बदरीनाथ ७० मील, त्रिजुगी-नारायण १६ मील और केदारनाथ २३ मील। केदारनाथ होकर बदरीनाथ जानेवाले यात्रियों को यहीं लौटकर आना पड़ता है।

आगे २ मील पर भेत चट्टी या नारायणकोटी आई। वहां १८ प्राचीन मंदिर हैं। आगे १ मील पर व्यूंगमल्ला चट्टी आई, जहां लकड़ी के भांति-भांति के बर्तन बनाये जाते हैं। यहां एक जल-प्रपात है, जिसके पानी को नियंत्रण में करके मशीनें चलाई जाती हैं। लकड़ी पर खराद आदि का काम अच्छा होता है।

व्यूंगमल्ला से आगे व्यूंगतल्ला तक कोई एक मील चढ़ाई-ही-चढ़ाई है। अनंतर दो मील पर मैखंडा या झूला चट्टी आती है। यहांपर महिषासुर-मर्दिनी का मंदिर और हिंडोला है। स्कंदपुराण में उल्लेख है कि भगवती ने यहींपर महिषासुर को मारा था। स्थान बहुत सुंदर है। चारों ओर बड़े ही आकर्षक दृश्य दिखाई देते हैं। हरी-भरी उपत्यकाएं यात्रियों को मोह लेती हैं। यहां दो खंभों पर एक झूला पड़ा है, जिसपर झूलने का बड़ा माहात्म्य है। हम सब बारी-बारी से झूले। कुछ आगे एक देवघर है, जिसके भीतर रुहेलों द्वारा खण्डित की गई दर्जनों मूर्त्तियां हैं। उनमें मैले पत्थर की शिव और गौरी की मूर्त्तियां बड़ी भव्य हैं। मैखण्डा से आगे दो मील पर फाटा-चट्टी आई। इधर गेहूं के खेत खूब मिलते हैं।

शाम को ५॥ बजे फाटा पहुंचे। आगे बढ़ने के लिए अब

समय न था। इसलिए रात को वहीं ठहरने का निश्चय किया।

इस रास्ते में मंगते बहुत मिलते हैं। छोटे-छोटे लड़के-लड़कियां हाथ पसारे सामने आते हैं और रट लगाकर कहते हैं, "पाई-पैसा, पाई-पैसा।" कोई-कोई सुई-धागा और बटन मांगते हैं। इतने पीछे पड़ते हैं कि बिना कुछ दिये छुटकारा पाना मुश्किल होता है। गरीबी इधर बहुत है। उतनी ही गंदगी भी है।

फाटा पर ठहरने के लिए स्थान अच्छा मिल गया। दो-तीन बड़े-बड़े कमरे। खाना-पीना हुआ। घूम-घामकर सोये। लेकिन प्रह्लाद का ज्वर बढ़ गया और रातभर बुखार की तेजी के कारण परेशान रहे। हम लोगों की नींद बीच-बीच में उचटती रही। चिंता हुई। दो दिन से उनका बुखार बराबर चल रहा था। आगे कैसे होगा? हम अब ५२५० फुट की ऊंचाई पर आ गये थे, सर्दी शुरू हो गई थी। आगे ठंड और भी बढ़नेवाली थी।

सबेरे उठे। कड़ाके का जाड़ा था। पानी में हाथ दिया तो फुरफुरी आ गई। गरम कपड़े निकालकर पहनने पड़े। जल्दी रवाना होना चाहते थे, किंतु प्रह्लाद की तबीयत के कारण जल्दी निकल नहीं सके। वहां एक छोटी-सी डिस्पेंसरी थी, बिना डाक्टर की। कम्पाउंडर को बुलाया। उन्होंने देखकर कहा कि वैसे डरने की कोई बात नहीं है, लेकिन हो सकता है कि मियादी बुखार हो। उन्होंने आगे की सर्दी में रोगी को न ले जाने की सलाह दी। विष्णुभाई की भी राय हुई कि इस हालत में उन्हें आगे ले जाने का खतरा उठाना बुद्धिमानी नहीं होगी। तब सवाल उठा कि व्यवस्था कैसे हो? प्रह्लाद के साथ कौन रहे? विष्णुभाई ने कहा, "आप लोग जायं। मैं एक बार केदारनाथ

हो आया हूं। इसलिए मेरी चिंता न करें और चले जायं।"

काफी चर्चा के बाद विष्णुभाई की ही बात मानी गई। ७॥ बजे के लगभग उन दोनों को छोड़कर चले। मन बड़ा भारी हो रहा था। अबतक की यात्रा कितने आनंद से हुई थी। अकस्मात उसमें व्यवधान पड़ गया। सारी टोली दुखित हुई, पर और कोई चारा भी तो न था।

एक टट्टू और एक बोझी उनके पास रह गया, ताकि अगर तबीयत ठीक हो जाय तो वे चल पड़ें और केदारनाथ में हमें मिल जायं। प्रह्लाद की उस समय की हालत को देखते यह मुश्किल लगता था, फिर भी आशा तो बनी ही रही।

: ११ :

विचित्र दुनिया

फाटाचट्टी से आगे का मार्ग बड़ा सुंदर है। ज्यों-ज्यों ऊंचाई पर चढ़ते जाते हैं, हरी-भरी उपत्यकाएं आगे-पीछे दीख पड़ती हैं। ऊंचे-ऊंचे सघन वृक्षों के कारण पर्वतमालाएं बड़ी सुहावनी लगती हैं। कहीं-कहीं छोटे-छोटे गांव उस वनश्री के बीच ऐसे जान पड़ते हैं, मानो प्रकृति की अंगूठी में नग जड़े हों। यहां के ग्रामवासियों की गुजर-बसर कुछ तो खेती से होती है, कुछ बंजी-व्यापार से।

यहां की सारी भूमि को धार्मिक रूप देकर यात्रियों से पैसे वसूल करने के लिए जगह-जगह पर लोगों ने देवी-देवताओं की मूर्त्तियां रख छोड़ी हैं। कहीं गणेश की मूर्त्ति है तो कहीं गरुड़ की, कहीं शिव की है तो कहीं पार्वती की। मूर्त्ति के पास एक आदमी बैठा रहता है। सामने थाली रहती है, जिसमें कुछ पैसे पड़े रहते हैं। यात्रियों के देखते ही वह आदमी कोई कथा सुनाकर उस स्थान और उस मूर्त्ति का माहात्म्य इस ढंग से समझाता है कि बहुत-से भोले-भाले यात्री थाली में पैसे डाल देते हैं। कमाई के अनेक केंद्र इस सारी यात्रा में मिलते हैं। एक बात जरूर है। यदि इन लोगों से सुनकर सारी कहानियां लिखी जायं तो एक बड़ा रोचक और मनोरंजक ग्रंथ तैयार हो सकता है।

लाड़नू के एक वैद्यजी से गुप्तकाशी के उधर ही से परिचय हो गया था। मिले तो उनका चेहरा बड़ा उतरा हुआ दिखाई दिया। पूछने पर मालूम हुआ कि गुप्तकाशी में कोई उनका ट्रंक

उड़ा ले गया। उसमें उनकी पत्नी के कुछ गहने और गर्म कपड़े थे। रात को ट्रंक को सिरहाने रखकर सोये। सवेरे उठे तो ट्रंक गायब। बहुतेरी खोज की पर पता नहीं लगा। उन्हें गहनों के जाने का उतना मलाल नहीं था, जितना कि गर्म कपड़ों का। उनकी पांच-छः साल की लड़की बिना गर्म कपड़ों के आगे की सर्दी को कैसे बर्दाश्त करेगी ? उधर के लोग गरीब होते हुए भी बड़े ईमानदार हैं। यह खोटा काम उनका तो हो नहीं सकता था। संभवतः साधु के वेश में कोई चोर पीछे लग गया होगा और मौका देखकर उसने ट्रंक पर हाथ साफ कर दिया होगा। मैंने वैद्यजी से कहा कि वह पंडे को पकड़ें, पर उनकी बातचीत से मालूम हुआ कि वह पहले ही पंडे से काफी कहा-सुनी कर चुके हैं, पर कोई नतीजा नहीं निकला।

पिछले पड़ाव से पांच मील चलकर सवा नौ बजे रामपुर चट्टी पहुंचे। यह चट्टी बड़ा पड़ाव है। खाने-पीने के साथ-साथ जरूरत की अधिकांश वस्तुएं मिल जाती हैं। थोड़ी देर रुककर भोजन और आराम किया, फिर आगे बढ़े। हम सबके पैरों में छाले पड़ गये थे, लेकिन चलते-चलते पैर अब आदी हो गये थे। दूसरे, केदारनाथ पहुंचने की इतनी उमंग थी कि पैर सारी परेशानी खुशी-खुशी सह रहे थे।

आज के रास्ते में चढ़ाई अधिक थी। कहीं समतल भूमि आ जाती थी या चढ़ाई अधिक नहीं होती थी तो बड़ी राहत मिलती थी, लेकिन ज्योंही देखते थे कि सामने खड़ी चढ़ाई है तो एकदम हौसला पस्त हो जाता। कैसी विचित्र दुनिया है वह ! न वहां कोई धनी है, न रंक; न कोई बड़ा है, न छोटा; न नीच है, न कोई ऊंच; एक बड़े कुटुंब के सदस्यों की भांति सब प्रेम से हिल-मिलकर चलते हैं। थोड़ी देर की जान-पहचान में ही ऐसा लगता है, मानों

एक दूसरे से वर्षों का परिचय हो।

रास्ते में बहुत-सी बकरियां और भेड़ें पहाड़ के ढलानों पर चरती हुईं मिलीं। उनमें से कुछ तो ऐसी खतरनाक जगहों पर चर रही थीं कि देखकर डर लगता था। ज़रा पैर उधर हुआ कि नीचे। चरवाहे ने बताया कि ऐसी दुर्घटनाएं बहुत कम होती हैं। पैर सधे होने के कारण भेड़-बकरियां बड़ी तेजी से मन-चाहे स्थान पर चरकर सही-सलामत ऊपर आ जाती हैं।

हम लोग काफी ऊंचाई पर पहुंच गये थे। मनोरंजन के लिए हममें से किसीने एक बड़ा-सा पत्थर यह देखने के लिए कि उसका क्या हश्र होता है सरकाकर नीचे पटक दिया। इसपर केदारबाबा के दर्शन करके लौटती हुई एक बहन ने टोका, बोलीं, "यह क्या करते हो, भैया! लोग मेहनत करके रास्ते की पाड़ बांधते हैं, और तुम उसमें से पत्थर निकालकर फेंक रहे हो?" उनकी बात समाप्त होते-होते पत्थर उछलता-कूदता खंड-खंड होकर बहुत नीचे पहुंच चुका था और बिखरकर एक ज़रा-सा टुकड़ा-मात्र रह गया था।

: १२ :

गौरीकुंड में

गौरीकुंड पहुंचने से पहले सिरकटे गणेश के पास रुके। पुजारी ने बताया कि यह वह स्थान है, जहां पार्वती ने रखवाली के लिए गणेश को बिठा दिया था। शिवजी आये तो गणेश ने उन्हें रोका। इसपर गुस्सा होकर शिवजी ने उनका सिर उड़ा दिया। जब पार्वती को यह मालूम हुआ तो वह बहुत रोईं-धोईं। तब शिवजी ने हाथी के एक बच्चे का सिर काटकर उनके लगा दिया। उस समय से गणेश गजानन बन गये।

साढ़े पांच बजे गौरीकुंड पहुंचे। आज की रात वहीं बितानी थी। बाबा काली कमलीवाले की धर्मशाला में पहुंचे। पर वह खचाखच भरी हुई थी। बहुत-से यात्री स्थान के लिए चिंतित होकर इधर-उधर भटक रहे थे। हम लोगों को जैसे-तैसे एक कमरा मिला। यहां सर्दी काफी थी, लेकिन जब देखा कि कुछ ही कदम पर एक तप्तकुंड है तो तबीयत खुश हो गई। कुंड का पानी इतना गर्म था कि यकायक उसमें कोई हाथ या पैर नहीं डाल सकता था। गोमुखी में से, जहां जलधारा निकलकर कुंड में गिर रही थी, वहां तो पानी में से भाप उठ रही थी।

सामान आने में देर थी। पर सामने गर्म पानी देखकर सब्र कैसे हो सकता था? जांघिया पहनकर कुंड में स्नान करने पहुंचे। ज्योंही पानी में पैर डाला कि झट बाहर खींच लिया। पानी बेहद गर्म था। प्रकृति की माया देखिये। एक ओर इतना गर्म पानी कि

हाथ डालो तो जल जाय; दूसरी ओर कुछ ही कदम पर मंदाकिनी की हिम जैसी शीतल जलधारा, जिसमें हाथ डालते ही सारा शरीर सिहर उठे! प्रकृति की लीला अपरम्पार है।

केदारनाथ की यात्रा में गौरीकुंड अंतिम बड़ा पड़ाव है। बहुत आकर्षक स्थान है। ऊंचाई ६००० फुट। बस्ती काफी घेरे में फैली हुई है। उसमें घुसते ही एक और कुंड आता है, जिसका पानी कुछ-कुछ पीला और गुनगुना है। कहते हैं, यही वह कुंड है, जिसमें पार्वती स्नान करती थीं। पंडे ने बताया कि इस कुंड के पानी का रंग प्रायः बदलता रहता है। इसमें सचाई हो या न हो, लेकिन आश्चर्य इस बात का है कि इस कुंड का पानी रंगीन है, जबकि कुछ ही गज पर तप्तकुंड का पानी सामान्य वर्ण का है। बस्ती के बीच में गौरी का छोटा-सा मंदिर है, जिसमें प्रातःकाल पूजन और सायंकाल आरती होती है। आरती में अंबे-गौरी और गणेश-वंदना के भजनों आदि के रिकार्ड बजाये जाते हैं।

रात को भोजन की अच्छी व्यवस्था होगई। दुकानदार ने साग-पूड़ी बनाकर दे दिये। खा-पीकर सोने से पहले गौरी के मंदिर में गये। आरती के समय काफी लोग इकट्ठे हो गये थे।

: १३ :

आखिरी मंजिल

रात को स्थान की तंगी और कोलाहल के कारण नींद नहीं आई। बड़े तड़के उठे, निवृत्त हुए, तप्तकुंड में स्नान किया और ५.५५ पर टोली ने कूच कर दिया। यहां हमें बताया गया था कि आगे सात मील की बड़ी विकट चढ़ाई है। उसमें ५,००० फुट से भी अधिक चढ़ना पड़ता है। आगे बढ़ने पर लगा कि सचमुच चढ़ाई बड़ी कठिन है। थोड़ी-थोड़ी दूर पर सांस लेने के लिए रुकना पड़ता था। पर जितना हमें डराया गया था, चढ़ाई उतनी भयंकर नहीं निकली। चार मील चढ़ने पर रामबाड़ा चट्टी आई। यहां के दृश्य बड़े ही मनोरम हैं। उन्हें देखकर हृदय उछलने लगता है। सामने सूर्य के प्रकाश में चमकते धवल शिखर और इधर-उधर तथा पीछे हरे परिधान में आवृत्त पर्वत-मालाएं—कोई ऊंची, कोई नीची! उनके मध्य चपलता से बहती मंदाकिनी की धारा! कहीं-कहीं पर पर्वतों के वक्ष पर अठखेलियां करते प्रपात, ऊपर निर्मल आकाश! प्रकृति के इस रूप को देखकर श्रद्धा से सिर झुक जाते हैं।

अब कुल तीन मील की बात रह गई थी। रामबाड़ा इस यात्रा की आखिरी चट्टी है। वहां कुछ देर रुके। एक दूकान पर नाश्ता किया, दूध पिया। दूकानदार बड़ा दिलचस्प आदमी निकला। बूढ़ा था और संस्कृत-मिश्रित हिंदी बोलता था। मैंने कहा, "बाबा, तुम तो बड़ी अच्छी हिंदी बोलते हो।"

वह बोला, "आप समझते क्या हो? मैं 'अनाशक्ति-योग का बराबर पाठ करता हूं।"

'अनासक्ति' की जगह 'अनाशक्ति' उसने इस ढंग से कहा कि मुझे हँसी आ गई। मैंने उससे पूछा, "बाबा, गांधीजी को जानते हो?"

"क्यों नहीं? उन महात्मा को कौन नहीं जानता?"

"अच्छा देश के और किस-किस नेता को जानते हो?"

मेरे इस सवाल पर उसके बूढ़े चेहरे पर मुस्कराहट खिल उठी। गर्व के साथ बोला, "मैं सब बड़े-बड़े आदमियों को जानता हूं। राजेंद्रप्रसाद हमारे राष्ट्रपति हैं, जवाहरलाल नेहरू प्रधान मंत्री। हैं न?"

उसकी इस जानकारी पर हम सबको थोड़ा आश्चर्य हुआ। आमतौर पर शहर से दूर रहनेवाले लोगों की दिलचस्पी बहुत सीमित होती है। पहाड़ी प्रदेशों में तो, जहां यातायात की सुविधाएं नहीं हैं, अखबार नहीं पहुंचते, लोग राजनीति से और भी अजानकार होते हैं। पर वह वृद्ध इस मामले में अपवाद थे।

वृद्ध से और बातें करने की इच्छा हुई, लेकिन देर हो रही थी। सो आगे बढ़े। रामबाड़ा से फिर दृश्य बदले। इस यात्रा में पहली बार अब बर्फ पर चलना पड़ा। बड़ा मजा आया। चलते-चलते लाठी से बर्फ तोड़ी, उसके लड्डू बनाये और बच्चों की तरह उन लड्डुओं को फैंक-फैंककर खेले। लोगों का कहना था कि यहां की हवा ऐसी है कि बहुतों को मूर्च्छा आ जाती है। यह बात सोलहो आने गलत निकली। हममें से कोई भी मूर्च्छित नहीं हुआ, न हमने और किसी यात्री को मूर्च्छित होते देखा।

हरियाली धीरे-धीरे कम होती जा रही थी। अंत में हम ऐसी

जगह पहुंचे, जहां पर्वत एकदम वृक्ष-विहीन थे। उनकी चोटियां बर्फ से ढकी थीं। जमे हुए प्रपातों की धाराएं उनपर ऐसी दिखाई देती थीं, जैसे किसीने खड़िया से रेखाएं खींच दी हों। भांति-भांति की हिमाकृतियां वहां दीख पड़ती थीं।

कुछ ही दूरी पर हमें धुंधली-सी पुरी दीख पड़ने लगी। वही तो था केदारबाबा का धाम, जिसके दर्शन के लिए हम लोग इतनी दूर चलकर आये थे। हृदय में बड़ी गुदगुदी अनुभव हुई। हमारे उल्लास का साथ देते हुए जब मेघखंडों ने छोटी-छोटी बूंदों के रूप में पुष्पवर्षा प्रारंभ की तो हमें और भी आनंद आया। आनंद के साथ-साथ कुछ चिंता भी हुई। अभी हमें थोड़ा-सा फासला और तय करना था। सामान काफी पीछे था। उसके भीग जाने का अंदेशा हुआ। हमें मालूम हुआ कि दस-ग्यारह बजे से वहां प्रायः बादल घिरने लगते हैं और शाम तक घिरे रहते हैं। पानी भी कभी-कभी पड़ता रहता था। अजीब-सी बात थी। चले थे तब आकाश एकदम साफ था। रास्तेभर वैसा ही रहा। पर यहां पहुंचते-पहुंचते बादल एक-दूसरे से आंख-मिचौनी करने लगे। जो हो, उस समय के दृश्य की अलौकिकता अनुभव की जा सकती है, शब्दों में उसे नहीं बांधा जा सकता।

आखिर देवदेखनी स्थान पर पहुंचे, जहां से केदारनाथ का मैदान प्रारंभ होता है। फिर मंदाकिनी के पुल को पार करके पुरी में दाखिल हुए। हमारे पंडे के आदमी ने वहां पहुंचकर पहले ही से स्थान की व्यवस्था कर रक्खी थी। सीधे वहीं पहुंचे। सर्दी इतनी कड़ाके की थी कि शरीर अकड़ा जा रहा था। अब हम ११७५० फुट की ऊंचाई पर थे। तीन ओर हिममंडित गिरि-शृंखलाएं थीं, चौथी ओर दूर-दिगंत में हरी चादर ओढ़े उपत्यकाएं।

: १४ :

जय केदारनाथ !

जिस मकान में ठहरे, वह खूब बड़ा और अच्छा था। उसके बरांडे में खड़े होकर इधर-उधर निगाह डाली तो सारा शरीर पुलकित हो उठा। धुनी हुई रुई के छोटे-छोटे फोहों की भांति बर्फ गिर रही थी और आसमान काली-काली घटाओं से घिरा था। जान पड़ता था, मध्याह्न में ही संध्यारानी का आगमन हो रहा है। उस वायुमण्डल में हिम का मुकुट धारण किये श्वेत गिरि-शृंग हमारे अंग-अंग को पुलकित कर रहे थे।

पौराणिक मान्यता के अनुसार गढ़वाल 'केदारखण्ड' के नाम से विख्यात है। चूंकि द्वादश-ज्योतिर्लिंगों में से केदारनाथ इस प्रदेश के अधिपति माने जाते हैं, इसलिए इस भूखंड का नाम केदारखंड पड़ा। कहते हैं, इस पुण्यभूमि में सबसे पहले महात्मा उपमन्यु ने शिवजी की आराधना की थी। द्वापर में जब पांडव राजपाट छोड़-कर हिमालय में केदारनाथ के दर्शन के लिए गये तो शिवजी ने उन्हें गोत्रहत्या का दोषी जानकर उनसे बचने के लिए महिष (भैंसे) का रूप धारणकर पृथ्वी में प्रवेश करना चाहा, पर जैसे ही उनका अग्र भाग भूमि के अंदर घुसा कि भीमसेन ने उन्हें पकड़ लिया। इसपर शिवजी ने प्रसन्न होकर उन्हें दर्शन दिये और उनका गोत्र-हत्या का पाप दूर हो गया। शिवजी का जो अग्र भाग भूमि के अंदर प्रविष्ट हो गया था, वह नैपाल में प्रकट हुआ, जो 'पशुपतिनाथ' के नाम से आज पूजा जाता है। शेष चार भाग उत्तराखंड के चार

अन्य स्थानों में पूजे जाते हैं—बाहें तुंगनाथ में, मुख रुद्रनाथ में, नाभि महमहेश्वर में और जटा कल्पेश्वर में। यही 'पंचकेदार' कहे जाते हैं।

ऊंचाई अधिक होने के कारण सर्दी इतनी अधिक थी कि हम लोग ठिठुरे जा रहे थे। हमने बरांडे में जलती आग तेज की और उसके चारों ओर बैठकर हाथ सेकने लगे। जैसे ही निगाह बाहर जाती थी, बर्फ गिरती दिखाई देती थी। थोड़ी देर में बोझी सामान लेकर आ गये। वे बहुत थक गये थे। बड़ी बहादुरी से उन्होंने यह मंजिल पूरी की।

सामान खोलकर गरम कपड़े पहने। हीरालालजी से उस आकर्षक दृश्य का आनंद लेने का लोभ संवरण न हुआ। वह छाता लेकर बाहर जाने को तैयार हुए। हम लोग भी साथ हो लिये। महिलाओं को छोड़कर सब घूमने निकल पड़े। बर्फ बराबर पड़ रही थी और गर्म कपड़ों से लदे होने पर भी कंपकपी आती थी। मंदिर के पट १ बजे बंद हो जाते हैं और एक बजनेवाला था। सबसे पहले हम मंदिर में पहुंचे। अंदर स्थानाभाव के कारण थोड़े-थोड़े लोग ही जा सकते थे। हमें नंगे पैर कुछ देर बाहर प्रतीक्षा करनी पड़ी। फर्श इतना ठंडा था कि पैरों में दर्द होने लगा। केदारनाथ का यह मंदिर गोपेश्वर की भांति उत्तराखंड के सबसे विशाल मंदिरों में से है। उसे देखने से मालूम होता है कि वह बहुत प्राचीन है। उसके बाहर चारों ओर काफी बड़ा चबूतरा है, जिसपर जगह-जगह बर्फ पड़ी थी। मुख्यद्वार के सामने नंदी की विशाल मूर्त्ति थी। बारी आने पर हम लोग अंदर पहुंचे।

सभामंडप में चार विशाल पाषाण-स्तंभ हैं। दीवार की गोखों में आठ मूर्त्तियां हैं, जिन्हें दिखाकर कहा जाता है कि वे द्रौपदी

सहित पांचों पांडवों की हैं। लेकिन राहुलजी के मतानुसार वे पांडव-मूर्त्तियां नहीं हैं। उनका संबंध शैव-सम्प्रदाय से है। बीच में फिर नंदी की मूर्त्ति है। इसके पश्चात् मुख्य मंदिर में प्रवेश करते हैं। चौखट पर अनेक छोटी-छोटी मूर्त्तियां हैं। उनमें कई तो दिगंबर हैं और कई पद्मासनस्थ मुद्रा में हैं। अंदर गर्भ-गृह में केदारनाथ का लिंग है। यह लिंग अन्य शिवलिंगों की भांति नहीं है। वह त्रिकोणाकार एक बृहत् शिला है। कहा जाता है, इसी शिला की पांडवों ने पूजा की थी और उसपर घी लेपकर उससे हृदय का स्पर्श किया था। आज भी पूजा की यही पद्धति प्रचलित है। पूजा की सामग्री के साथ लोग घी लाते हैं और उसका शिला पर मर्दन करते हैं। श्रावण के महीने में लोग कमल चढ़ाने का विशेष महत्व मानते हैं।

अंदर घी के बहुत-से दिये जल रहे थे, जिनके कारण वहां बड़ी सुगंधि फैली थी। घी के कारण फर्श इतना चिकना हो रहा था कि पैर फिसलते थे। फर्श अंदर भी खूब ठंडा था। मोजे पहनकर जाओ तो मोजे गंदे हों, नंगे पैर जाओ तो पैर गलें। फिर भी हम लोग काफी देर तक वहां रहे और सब चीजों को ध्यान से देखते रहे। मंदिर में खूब कोलाहल था। पुजारी ऊंचे स्वर में मंत्र-पाठ करते हुए यात्रियों से पूजा करा रहे थे। स्त्री और पुरुष, बालक और वृद्ध, अमीर और गरीब सब भक्ति-विह्वल होकर पूजा कर रहे थे।

मंदिर से कुछ ही फासले पर आदिगुरु शंकराचार्य की समाधि थी। उसे देखने गये। कहते हैं, केदारनाथ के मंदिर का निर्माण शंकराचार्य ने ही कराया था और यहींपर उनके शरीर का लोप हुआ था। दक्षिण के किसी साधन-संपन्न व्यक्ति ने वह समाधि बनवा दी है। समाधि के एक कोने पर निर्माण करानेवाले के नाम की तख्ती लगी है।

मंदिर के पीछे तीन हाथ लंबा अमृतकुंड है, जिसमें दो शिव-लिंग हैं। पूर्वोत्तर भाग में 'हंसकुड' और 'रेतकुंड' हैं। हंसकुंड में लोग अपने मृतकों की मुक्ति के लिए उनकी कुंडलियां डाल जाते हैं। कई कुंडलियां उसमें पड़ी हुई थीं। हमें बताया गया कि रेत-कुंड के निकट खड़े होकर 'ओं नमो शिवाय' कहो तो उसके पानी में बुलबुले उठने लगते हैं। पर यह चमत्कार हम लोगों के देखने में नहीं आया। बुलबुले उठ जरूर रहे थे, लेकिन ऐसा दिखाई नही दिया कि 'ओं नमो शिवाय' कहने पर ही उठते हों।

मंदिर के सामने कुछ कदम पर 'उदक-कुंड' है, जिसके जल का यात्री लोग आचमन करते हैं। पुरी से दो फर्लांग पर भुकुंड भैरव, आध मील पर चंद्रशिला, डेढ़ मील पर चोरबाड़ी ताल (जिसे गांधीजी की भस्म-विसर्जन के बाद ,गांधी सरोवर, कहते हैं(तथा कोई तीन मील पर बासुकि-ताल है। हम लोग निकट-वर्ती कुंडों को देखकर पांच-छ, सौ फुट की ऊंचाई पर भैरव की मूर्त्ति देखने गये। मूर्त्ति तो सामान्य थी, पर सारी चढ़ाई बर्फ पर होकर की। बड़ा आनंद आया। ऊंचाई पर होने के कारण वहां से केदारनाथपुरी तथा पर्वतों के दृश्य बड़े अच्छे लगे। मार्ग-दर्शक ने एक ऊंचे पर्वत की ओर संकेत करके बताया कि वह ,भारतखूंट, है अर्थात् भारत का छोर। उस पर्वत की ऊंचाई लगभग २४ हजार फुट है, पर लगता ऐसा था, जैसे वह हमारे बिल्कुल पास ही हो।

'भुकुंड भैरव' से सटी एक हिमानी झील है, जिसमें से मंदाकिनी निकलती है। उद्‌गम बड़ा सादा है, जैसा कि प्रायः नदियों का हुआ करता है। पर उसके दर्शन से हमें बड़ा हर्ष हुआ। भारतीय संस्कृति में मंदाकिनी का जो स्थान है, वह किसीसे छिपा नहीं है। उसके तट पर छोटे-बड़े अनेक तीर्थ बसे हैं। पता नहीं,

कब से वह हमारे देशवासियों को अध्यात्म का पाठ देती आई है। हमारे लिए तो उसका उद्गम एक महान् संस्कृति के उद्गम के रूप में था।

मंदाकिनी के अतिरिक्त अन्य छोटी-बड़ी नदियों की वहां भरमार है। मधुगंगा, क्षीरगंगा, सरस्वती तथा स्वर्गारोहिणी के तो प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं। कहते हैं, उनमें स्वर्गारोहिणी वह नदी है, जिसके किनारे-किनारे पांडव बर्फ में गलने गये थे।

वहांपर एक स्थान बड़ा भयंकर है, जहां से कूदकर बहुत-से भोले-भाले धर्मांध व्यक्ति किसी जमाने में मोक्ष पाने की अपनी मनोकामना पूरी करते थे। वह जगह इतनी ऊंची है कि वहां से गिरने पर जिन्दगी की कोई आशा ही नहीं रह सकती थी। अब वहां जाना निषिद्ध है।

छः महीने तक केदारनाथपुरी और मंदिर बर्फ से ढके रहते हैं। अप्रैल के अंतिम सप्ताह या मई के आरंभ में पट खुलते हैं। यदि जाड़े के दिनों में कोई यहां आने का साहस करे तो उसे बर्फ के ढेर में पुरी का पता भी नहीं चलेगा।

सबसे विचित्र बात यह है कि यहां के दृश्य थोड़ी-थोड़ी देर में बदलते रहते हैं। जैसे-जैसे मौसम के हिसाब से बर्फ घटती-बढ़ती है, पर्वतों का रूप भी परिवर्तित होता जाता है। बर्फ के कारण पहाड़ों पर अपनी कल्पनानुसार अनेक आकृतियां दीख पड़ती हैं। कहीं ऐरावत दिखाई देता है तो कहीं रथ; कहीं जटाजूटधारी शंकर भगवान् तपस्या करते दीख पड़ते हैं तो कहीं पार्वती।

मैं सोचता था कि कौन-सी ऐसी प्रेरणा है, जो हर साल हजारों यात्रियों को इस सुनसान और बीहड़ स्थान की यात्रा के लिए विवश कर देती है ? अक्तूबर के अंत में, जबतक यहां के पट बंद

नहीं होते, नर-नारियों का तांता लगा रहता है। चढ़ाई प्राण लेती है, पैरों में छाले पड़ जाते हैं, कदम-कदम पर सांस लेने के लिए रुकना पड़ता है, फिर भी क्या है, जो निरंतर आगे बढ़ने का साहस और इतनी लंबी मंजिल तय करने का बल प्रदान करता है ? ऐसे कई प्रश्न मन में उठते थे और उनका उत्तर वहां की भूमि का प्रत्येक कण दे रहा था।

केदारनाथ पुरी की बस्ती काफी बड़ी है। उसमें लगभग साढ़े तीनसौ घर हैं, पर अधिकांश पंडों के हैं। यात्रियों के ठहरने के लिए वहां अच्छी व्यवस्था है।

जैसाकि हमें बताया गया था, दोपहर बाद यहांपर प्रायः सूर्य के दर्शन नहीं हुए। शाम तक बराबर बादल घिरे रहे। खूब जोर का जाड़ा था।

शाम को हम सब आरती में सम्मिलित हुए। भीड़ अधिक नहीं थी, लेकिन पुजारियों के मंत्र-पाठ और सामग्री की सुगंधि से इस समय भी सारा मंदिर महक रहा था। आरती के बाद बाहर आये। तबतक बाहर अंधेरा फैलने लगा था और पुरी निस्तब्ध हो चली थी।

अपने निवास पर आये और भोजन करके कुछ देर तक बातें करते रहे। विष्णुभाई और प्रह्लाद के रास्ते में छूट जाने का बार-बार खयाल आता था और बुरा लगता था।

पंडे ने रजाइयों की व्यवस्था कर दी थी। साथ में भी ओढ़ने-बिछाने का काफी सामान था, फिर भी रातभर जाड़े से कुड़कुड़ाते रहे। टोली में से किसीको भी नींद नहीं आई। नींद न आने का एक कारण शायद यह भी था कि हम लोग ११७५० फुट की ऊंचाई पर थे और हवा के पतले होने के कारण सिर बड़ा भारी हो

रहा था ।

जैसे-तैसे रात बीती । सबेरे जल्दी उठे । मौसम साफ था । बादलों का कहीं नाम भी न था। सर्दी बेहद तेज थी। नदी पर जाकर हाथ-मुंह धोया तो ऐसा लगा कि उंगलियां कट गईं ।

सात बजते-बजते मंदिर पर भीड़ बढ़ने लगी और उसकी सीढ़ियों के आगे पुस्तकों, चित्रों, तांबे के कड़ों और पत्तियों आदि की छोटी-छोटी कई दुकानें बिछ गईं । हम लोग फिर मंदिर में गये। कुछ साथियों को पूजा करनी थी, उन्होंने की। इस बीच हम लोगों ने घूमकर मंदिर के चारों ओर की मूर्त्तियां देखीं । कुछ मूर्त्तियां तो बड़ी ही सुंदर और भावपूर्ण थीं।

मंदिर के बाहर खड़े होकर जब एक निगाह चारों ओर डाली तो बहुत-से चित्र मानस-पटल पर उभर आये । सामने महात्मा उपमन्यु तपस्या कर रहे हैं। उधर देखिये, गोत्र-हत्या का पाप दूर करने के लिए पांडव भगवान शंकर का दर्शन करने चले आ रहे हैं। पुरवासी घी और मक्खन लिये कितनी भक्ति से उनका स्वागत कर रहे हैं। ब्रह्महत्या के पाप का प्रायश्चित्त करने के लिए मर्यादा-पुरुषोत्तम राम अपने भाई भरत और लक्ष्मण तथा सीता के साथ चले आ रहे हैं। पर यह युवक कौन है, जिसका मुखमंडल तेज से दीप्त हो रहा है ? ओहो, यह तो आदिगुरु-शंकराचार्य हैं । वह देखिये, पर्वतों के उत्तुंग शिखरों पर पर्वतराज और प्रकृति-देवी किस प्रकार आनंद से घूम रहे हैं ।

दृश्य बदला । यात्रियों का कोलाहल, दुकानदारों की तरह-तरह की आवाजें, आंखों में श्रद्धा-भक्ति-भरे यात्रियों की विदाई !

वहां से हटने को जी नहीं होता था, पर अभी तो आधी यात्रा ही हुई थी। बदरीनाथ जाना शेष था।

: १५ :

केदारनाथ से वापसी

गौरीकुंड से केदारनाथ जा रहे थे तभी से चंपाबहन की तबीयत कुछ गिरी हुई थी। केदारनाथ पहुंचते-पहुंचते उन्हें जोर का जाड़ा लगा और हरारत हो आई। रात जैसे-तैसे कटी। सबेरे उठीं तो मालूम हुआ कि आगे की यात्रा उनसे पैदल नहीं हो सकेगी। कुछ-कुछ बुखार भी था। उनके लिए एक टट्टू किया गया।

पर्वतों के पीछे ज्योंही बाल रवि का उदय हुआ, ऐसा जान पड़ा, मानो किसी चित्रकार ने श्वेत पर्वत-शिखरों की किनारी को सुनहरी रंग से अलंकृत कर दिया है। जैसे-जैसे सूर्य का प्रकाश बढ़ता गया, दृश्य भी बदलते गये।

अधिकांश यात्री यहां एक ही रात ठहरते हैं। अगले दिन तड़के उठकर चल देते हैं। इसका कारण संभवत: यह है कि एक तो यहां ठंड अधिक रहती है; दूसरे, यात्रियों को आगे जाने की जल्दी होती है। जो हो, मुझे लगा कि ऐसे स्थान पर दो-चार दिन अवश्य ठहरना चाहिए, जिससे आराम से सब चीजों को देखा और उनका आनंद लिया जा सके।

मंदिर-कमेटी के मंत्री बहुगुणाजी वहां नहीं थे; लेकिन कार्यालय के एक अधिकारी सज्जन से हमें बहुत सहायता मिली। उन्होंने हमें देखने योग्य सब चीजें दिखा दीं। उनके कारण हम थोड़े समय में वहां की अधिकांश वस्तुएं देख सके।

जल्दी करते-करते चलने में ८।। बज गये। अनिच्छापूर्वक हम सबने प्रकृति की उस महिमामयी स्थली को प्रणाम किया और चल दिये।

सोचते थे कि लौटते में उतार-ही-उतार है। दौड़ते-दौड़ते गौरीकुंड पहुंच जायंगे; लेकिन अनुभव कुछ दूसरा ही हुआ। चढ़ाई की अपेक्षा उतार कहीं अधिक थकानेवाला सिद्ध हुआ। थोड़ा चलने पर ही टांगें इतनी दुखने लगीं कि कदम उठाना मुश्किल हो गया। जैसे-तैसे रामबाड़ा-चट्टी पहुंचे। वहां काफी देर सुस्ताये। नाश्ता किया। जाते समय दूध मिल गया था, पर आते समय नहीं मिला।

रामबाड़ा से चले तो ऐसा लगता था कि पैर उठ नहीं रहे हैं, कोई पकड़कर खींच रहा है। उतार इतना अधिक था कि लाठी का सहारा होने पर भी धीमें चलना और शरीर का संतुलन रखना आसान नहीं था। हमारे एक साथी तो ठोकर खा गये और लुढ़कते हुए काफी नीचे आकर रुके। अच्छा हुआ, वह रास्ते से इधर-उधर नहीं हुए, अन्यथा अनर्थ हो जाता।

१२ बजे के लगभग गौरीकुंड पहुंचे। शरीर चूर-चूर हो रहा था। जितने यात्री लौटे थे, उनमें कुछ बंगाली महिलाएं भी थीं। सबके चेहरों पर थकावट झलकती थी, सबके पैर थके थे।

गौरीकुण्ड क्या पहुंचे, मानों खोये प्राण मिल गये। सीधे तप्त-कुंड पर गये। शरीर का गर्म पानी से खूब सेंक किया। बड़ा आराम मिला। थकावट बहुत-कुछ दूर हो गई। स्नान करके धर्मशाला में पहुंचे। तबतक सामान भी आ गया। बिस्तर खोलकर लेटे तो उठने को जी नहीं करता था। भोजन तैयार हुआ। सबके सिर में बड़ा दर्द था। सोने की कोशिश करने पर किसीको भी नींद न आई।

थोड़ी देर आराम करके उठे, भोजन किया। फिर बस्ती में घूमने चले। यहां शिलाजीत की कई दुकानें हैं। हिरन आदि पहाड़ी जानवरों की खालें भी बहुत मिलती हैं। हम लोगों ने कई दुकानों पर चक्कर लगाया, लेकिन कहीं कोई चीज पसंद न आई। जो थोड़ी-बहुत पसंद आईं, उनके दाम दुकानदारों ने बहुत बढ़ा-चढ़ाकर मांगे।

खा-पीकर सो गये।

: १६ :

त्रिजुगीनारायण

सवेरे उठे। पैर और टांगें बुरी तरह दुख रही थीं, लेकिन 'चरैवेति, चरैवेति' (चले चलो, चले चलो) के अतिरिक्त दूसरा रास्ता ही नहीं था! चंपाबहन रात को थकान और ज्वर के कारण बेचैन रहीं। उनके लिए अब टट्टू पर बैठना भी संभव न था। डांडी की गई। यहां से सबका त्रिजुगीनारायण जाने का विचार था, लेकिन चंपाबहन की तबीयत को देखकर निश्चय किया गया कि टोली बंट जाय और हीरालालजी, चंपाबहन तथा कुछ अन्य व्यक्ति सीधे फाटा-चट्टी पहुंचें और हम लोग त्रिजुगीनारायण होकर वहां मिलें।

पौने छः बजे टोली रवाना हुई। पौने तीन मील पर सोम-प्रयाग आया। हम पहले ही बता चुके हैं कि इधर जहां-जहां दो नदियों का संगम होता है, वे स्थान प्रयाग कहलाते हैं। सोम-प्रयाग में सोमनदी तथा वासुकी गंगा मिलती हैं। यहां से एक रास्ता त्रिजुगीनारायण को चला जाता है, दूसरा रामपुर-चट्टी को। संगम काफी निचाई पर है। यहां से त्रिजुगीनारायण की चढ़ाई प्रारंभ होती है। उतार के बाद वह चढ़ाई बड़ी सुखकर लगी।

सारा रास्ता बड़ा सुंदर है। हरियाली इतनी है कि देखकर जी हरा हो जाता है। नाना प्रकार के पुष्प वसंत की याद दिलाते हैं और उनकी सुरभि से सारा स्थान भर उठता है। रास्ते में शाकंबरी का मंदिर आया। वहां कुछ देर रुके। टोली के जो लोग

पिछड़ गये थे, उनके आ जाने पर आगे चले। यहां से एक पंडा साथ हो गया। वह तरह-तरह की कहानियां सुनाने लगा। एक हिमाच्छादित पर्वत-शिखर की ओर संकेत करके बोला, "वह देखिये, वे हिमराज हैं—पार्वती के पिता।" हम सबने उस ओर देखा। दृश्य की रमणीकता पर हृदय मुग्ध हो गया।

इधर के जंगल में गुलाब बहुत हैं। उनकी सुगंधि सारे वायुमंडल में व्याप्त थी। वृक्षों पर पक्षी चहचहा रहे थे। उनकी तान मिलाता एक श्रमिक युवक चट्टान का सहारा लिये मौज में बंसी बजा रहा था।

हमें बताया गया था कि इस रास्ते पर यात्रियों को सावधानी से चलना चाहिए, यहां मक्खियां बहुत हैं। उनके काटने से बड़ी पीड़ा होती है। लेकिन संयोग से हम लोगों में से किसीको भी इस विपत्ति का सामना नहीं करना पड़ा और बड़े आनंद से ९। बजे त्रिजुगीनारायण पहुंच गये।

त्रिजुगीनारायण बहुत बड़ा तीर्थ माना जाता है। हजारों यात्री वहां जाते हैं; लेकिन मेरी दृष्टि में इस स्थान का महत्व इसलिए है कि ९॥ हजार फुट की ऊंचाई पर होने के कारण वहां से चारों ओर बड़े ही भव्य दृश्य दिखाई देते हैं। पौराणिक कथा है कि यहां शंकर का विवाह हिमालय की कन्या पार्वती के साथ हुआ था। यहां छोटे-छोटे चार कुंड हैं—ब्रह्मकुंड, विष्णुकुंड, रुद्रकुंड और सरस्वतीकुंड। इन कुंडों में से किसीमें स्नान किया जाता है तो किसीके जल में आचमन। कुंडों में अनेक यात्री स्नान कर रहे थे। बेहद गंदगी थी। कुंडों के निकट ही नारायण का मंदिर है, जिसमें धातु की अनेक दर्शनीय मूर्तियां हैं। मंदिर के बाहर सभामंडप में अखण्ड धूनी जलती रहती है। लोग बताते हैं कि शंकर और पार्वती

के विवाह के समय जो अग्नि प्रज्वलित की गई थी, वही आजतक चालू रखी गई है। जो हो, स्थान बड़ा अच्छा है, पर गंदगी के कारण अधिक समय रुकने को जी नहीं किया।

मंदिर के बाहर छोटे-से प्रांगण में कई मंदिर हैं। कुछ खंडित मूर्त्तियां यत्र-तत्र रखी हुई हैं। इनमें की कई मूर्त्तियां ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी से भी पुरानी बताई जाती हैं।

: १७ :

टोली बंटी

त्रिजुगीनारायण में अच्छी तरह से घूम-घामकर और चित्र लेकर आगे बढ़े। अब तो उतार-ही-उतार था। पिछले दिन की यात्रा में पैर उतार के अभ्यस्त हो गये थे। इसलिए जोर पड़ने पर भी रास्ता बहुत अखरा नहीं।

१२ बजे के लगभग रामपुर-चट्टी पहुंचे। वहां रुककर भोजन किया और शाम को चलकर फाटा-चट्टी पहुंचे। यहींपर विष्णुभाई और ज्वरग्रस्त प्रह्लाद को छोड़ गये थे। प्रह्लाद का बुखार अब उतर गया था और वे दोनों टोली के लौटने की राह देख रहे थे। उनकी हालत अच्छी देखकर बड़ी खुशी हुई। विष्णु-भाई ने बताया कि प्रह्लाद की तबीयत तो हम लोगों के जाने के बाद ही ठीक हो गई थी, लेकिन कमजोरी अधिक होने के कारण उन्होंने केदारनाथ आने का खतरा उठाना ठीक नहीं समझा।

रात फाटा-चट्टी में बिताई। चंपाबहन को अब भी बुखार था। हम सब सोच में पड़ गये। आपस में चर्चा की कि क्या किया जाय। हीरालालजी की राय थी कि वह चंपाबहन को लेकर लौट जायं। हम लोग चाहते थे कि नहीं, लौटने की जरूरत नहीं है। चलें। जो होगा, देखा जायगा। लेकिन चंपाबहन खुद हिम्मत हार चुकी थीं। उनसे पूछते थे तो कहती थीं कि तबीयत जल्दी ठीक नहीं होगी और सबको परेशानी होगी। उन्हें समझाया, हिम्मत बंधाई तो उनका इरादा बदला, लेकिन हीरालालजी ने

कहा कि लौट जाना ही ठीक होगा । अंत में निश्चय हुआ कि हीरालालजी, चंपाबहन, शांता, सुमित्रा तथा राजकृष्णजी आदि लौट जायं । शांता और सुमित्रा दोनों बदरीनाथ जाने को बहुत उत्सुक थीं, लेकिन उन्होंने भी आखिर अनिच्छापूर्वक अपने पिताजी के साथ लौटने का फैसला किया । टोली के इस प्रकार छिन्न-भिन्न हो जाने से सबको बड़ा बुरा लगा ।

अबतक की यात्रा में सबसे अधिक साहस, धीरज तथा विनोद-वृत्ति रखनेवालों में हीरालालजी का स्थान सबसे आगे था । कड़ी यात्रा के बाद जब हम पूछते थे कि क्या हाल है तो वह सहज मुस्कान से कहते थे—बिल्कुल ठीक । हम लोग अपने पैर के छाले एक-दूसरे को दिखाते थे या थकान की शिकायत करते थे, लेकिन हीरालालजी ने हैरानी व्यक्त करनेवाला एक शब्द भी कभी मुंह से नहीं निकाला । गौरीकुंड लौट-कर उनके सिर में बड़ी पीड़ा हुई तब भी चुपचाप लेटे रहे । संयोग से उस दिन उनका नाती चि० विजय कुछ परेशान होकर रोने लगा तो उन्होंने चुपचाप अपने पैर का तलवा दिखाकर कहा, "विजयबाबू, तुम ज़रा-सी बात पर रोते हो, लेकिन देखो तो, मेरा पैर कैसा हो गया है ।"

अकस्मात् उसी समय मैं अंदर आया । मैंने उनका पैर देखा तो दंग रह गया । छाला पड़कर फूट गया था और काफी बीच की खाल उड़ गई थी । मैंने कहा, "आपने बताया क्यों नहीं ?" उन्होंने हँसकर उत्तर दिया, "इसमें बताने की क्या बात थी ! कोई दर्द थोड़ा होता है । मैं तो विजय को बहलाने के लिए दिखा रहा था ।"

हम लोग भुक्तभोगी थे । जानते थे कि छालों के पड़ने और

फूटने से कुछ समय तक कितनी पीड़ा होती है। उनके तो तलवे में छाले थे ! अबतक वह कैसे पैदल चलते रहे होंगे ! उनकी सहन-शीलता देखकर दिल भर आया।

अगले दिन छः बजे रवाना होकर नाला-चट्टी पहुंचे। इसी रास्ते हम केदारनाथ गये थे। २३ मील लौट आये थे और अब हमें बदरीनाथ के लिए नये रास्ते पर जाना था। लौटने-वाली टोली को सीधा गुप्तकाशी। टोली बंटी। सबकी आंखें डबडबा आईं।

: १८ :

उषा-अनिरुद्ध की प्रणय-भूमि

नाला-चट्टी से हमारी टोली अब बाईं ओर के मार्ग पर अग्रसर हुई। १। मील पर 'उत्तराखंड विद्यापीठ' आया। पर्वतों के मध्य निर्जन स्थान पर विद्यापीठ का भवन बड़ा सुंदर लगता है। इस स्थान का शिलान्यास केदारनाथ-मंदिर के स्व० रावल श्री नीलकंठ ने किया था। आज उसके प्रबंध के लिए एक ट्रस्ट है और उसमें संस्कृत, आयुर्वेद, उद्योग आदि की शिक्षा दी जाती है।

विद्यापीठ के निकट ही मंदाकिनी का पुल है। उसे पार करके ऊखीमठ गये। पुल से ऊखीमठ कोई १॥ मील है। यह चढ़ाई बड़ी कठिन है। धूप अधिक होने के कारण हमें और भी अखरी। छांह के लिए रास्ते में एक भी पेड़ न था। १२ बजे ऊखीमठ पहुंचे।

बदरीनाथ के लिए जो महत्त्व जोशीमठ का है, केदारनाथ के लिए वही महत्त्व ऊखीमठ का है। जाड़े के दिनों में केदारनाथ के पट बंद हो जाने पर वहां के रावल तथा प्रबंधक यहीं रहते हैं और यहींपर पूजा होती है। ऊखीमठ का मंदिर नया-सा जान पड़ता है। बहुत-सी मूर्त्तियां नई हैं, कुछ पुरानी भी हैं। हम लोग मंदिर के अहाते में ही यात्रियों के निवास के लिए निर्मित कमरों में ठहरे।

जबसे दिल्ली से रवाना हुए थे, दाढ़ी नहीं बनाई थी। बाल

काफी बढ़ गये थे। बालों के अभ्यस्त न होने के कारण मुंह पर खुजली आती थी और कुछ अटपटा-सा लगता था। इसलिए सबने हजामत बनाई। उषा-कुंड में कपड़े धोये, स्नान किया। तबतक खिचड़ी तैयार हो गई। सबने खाई। भोजन के बाद घूमने निकले।

यहां का मंदिर बड़ा विशाल है। अहाते के एक मंडप में कई मूर्त्तियां थीं, जिनमें नटराज की मूर्त्ति पुरानी थी। अष्टधातु की सूर्यमुखी फूलवाली दो सूर्य-मूर्त्तियां थीं। भीतर का शिवलिंग मुखाकृतिवाला था। पुरुष-प्रमाण के दाढ़ीवाले किसी सामंत की भी मूर्त्ति मंदिर में है। वहीं बगल में किसी दाढ़ीवाले शैवाचार्य के पास राजकुमार और राजकुमारी की दो मूर्त्तियां हैं।

भागवत में उल्लेख है कि पूर्वकाल में बाणासुर नामक दैत्य की कन्या उषा इसी स्थान पर रहती थी। श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध के प्रति उसकी आसक्ति हो गई और कुछ समय तक उनकी प्रेमलीला चलने के बाद उनका विवाह हो गया। इसी उषा के नाम पर इस स्थान का नाम 'उषामठ' पड़ा, जो कालांतर में बिगड़कर 'ऊखी-मठ' हो गया। यहां के मंदिर में उषा और अनिरुद्ध की मूर्त्तियां हैं। एक मूर्त्ति मांधाता की है। यहां का सबसे वड़ा और प्रधान मंदिर ओंकारेश्वर शिवलिंग का है। मंदिर पर दक्षिण की स्थापत्यकला का प्रभाव है।

शाम को रावल महोदय से मिलने गये। केदारनाथ के रावल दक्षिण भारत के जंगम गोसाईं (लिंगायत) जाति के होते हैं और बड़े ठाठ-बाट से रहते हैं। रावल युवक थे। बड़ी सरल प्रकृति के जान पड़े। हमने चित्र खिंचवाने को कहा तो झट राजी हो गये। बहुत देर तक उनसे चर्चा होती रही। केदारनाथ की गद्दी देखी। सजावट थी, पर गद्दी विशेष आकर्षक नहीं लगी। उसीके एक ओर

बैठे हुए पुजारी यात्रियों को प्रसाद दे रहे थे। मूर्त्तियां यहां काफी हैं और उन्हें इस ढंग से रखा गया है कि यात्रियों पर उनका अच्छा प्रभाव पड़ता है।

ऊखीमठ बड़ी चट्टी है। यहां राजकीय चिकित्सालय, डाकघर, चौकी आदि हैं। ऊंचाई लगभग ४३०० फुट है। फिर भी खूब गर्मी थी। शाम को बूंदें आईं। रात को मौसम अच्छा रहा।

यहां किसीने बताया कि केदारनाथ से वापसी में व्यूंग-चट्टी के आगे जूरानी में एक बगीचा आता है। वहां से एक मील के उतार के बाद काली नदी का पुल है। करीब उतनी ही दूरी पर कालीमठ है, जो काली नदी के तट पर बसा हुआ है। उसका उल्लेख 'कालीक्षेत्र' के नाम से भी मिलता है। कालीमठ में काली का मंदिर है, जिसमें शववाहिनी काली की मूर्त्ति है।

ऊखीमठ में बाजार काफी बड़ा है। जरूरत की सब चीजें मिल जाती हैं। दाम बेशक महंगे थे। सनलाइट साबुन की बट्टी आठ आने में मिली। मिश्री तीन रुपया और दूध डेढ़ रुपया सेर। यह महंगाई स्वाभाविक थी, क्योंकि यात्रा के दिनों में ही तो ये लोग अपनी कमाई कर सकते हैं।

: १९ :

यात्रा का द्वितीय चरण

ऊखीमठ से ५ बजने में १० मिनट पर रवाना हुए। उस समय मौसम बहुत बढ़िया था। नदी के उस पार गुप्तकाशी की इमारतें हरियाली के बीच बड़ी मोहक लग रही थीं। इस यात्रा में अब बड़ी विचित्र अनुभूति हो रही है। दिन में चलकर जब किसी चट्टी पर रात को ठहरते हैं तो ऐसा लगता है, सवेरे उठा ही नहीं जायगा, लेकिन नित्य नियम से ३ बजे आंख खुल जाती है और थकान का नाम भी नहीं रहता। जान पड़ता है, जैसे नया दिन हुआ हो, पिछले दिन की थकान विगत भूत की वस्तु बन गई हो। सामने होते रहे नया मार्ग, नया उत्साह और नई प्रेरणा।

ऊखीमठ से थोड़ा आगे चलने पर मंदाकिनी का साथ छूट गया। दूसरी ओर को मुड़े तो देखते क्या हैं कि फिर एक नदी साथ हो गई है। उसका नाम था आकाश-गामिनी गंगा। इस नदी का उद्गम तुंगनाथ में है। इधर का रास्ता निराला है। एक पर्वत की लंबी परिक्रमा करनी पड़ती है। रास्ते में कई पर्वत ऐसे मिले, जिनसे शिलाजीत निकाला जाता है। ग्वालियाबगड़ चट्टी तक उतार-ही-उतार रहा, लेकिन बाद में कड़ी चढ़ाई आई। पर सवेरे का समय होने से वह चढ़ाई अखरी नहीं।

चट्टी आने से कुछ पहले दो साधु रास्ते में बुरी तरह झगड़ते मिले। वे एक-दूसरे को गंदी गालियां दे रहे थे। सारा झगड़ा थोड़े-से आटे के पीछे था। हम लोगों ने समझाने की कोशिश की, पर वे

न माने । गालियां देते रहे । मुझे झुंझलाहट हुई । मैंने कहा, "भगवा कपड़े पहनकर यों लड़ने में तुम्हें शर्म नहीं आती । अब अगर एक भी गाली मुंह से निकाली तो अच्छा नहीं होगा ।"

वे चुप हो गये ।

१०।। बजे के लगभग पोथी-बासा पहुंचे । छोटी-सी चट्टी है । रुककर स्नान किया, भोजन किया और विश्राम करके फिर आगे बढ़े । सवेरे ८ मील चल चुके थे । २।।-३ मील चलकर शाम को वाणियाकुंड-चट्टी पर रुकना था । फासला अधिक नहीं था, लेकिन चढ़ाई-ही-चढ़ाई थी । खूब घना जंगल आया । चिनार के ऊंचे-ऊंचे पेड़ों के कारण रास्तेभर छांह रही । दृश्य भी नई तरह के थे । कई कच्चे पहाड़ दूर से दिखाई दिये । लगता था, वे राख के हैं । एक पहाड़ का कुछ भाग ढह गया था । उसके साथ किसी गांव के कुछ घर भी पाताल को चले गये थे ।

४ बजे वाणियाकुंड पहुंचे । चिनार के जंगल के बीच यह चट्टी बसी है । सामने तुंगनाथ का शिखर दिखाई देता है । बाईं ओर बदरीनाथ के हिममंडित धवल पर्वत । हम लोग लगभग ८५०० फुट की ऊंचाई पर पहुंच गये थे । मजे की सर्दी शुरू हो गई । काफी यात्री यहां इकट्ठे हो गये थे । उनमें ८२ वर्ष की एक बंगाली वृद्धा थीं । चेहरे पर झुर्रियां, कमर झुकी, लाठी के सहारे आगे बढ़ी जा रही थीं । मैंने उन्हें प्रणाम किया । बात की तो मालूम हुआ कि वह तारकेश्वर से आ रही थीं और केदार-बदरी की यह उनकी तीसरी यात्रा थी । भक्ति-भावना से उनका चेहरा चमक रहा था । मैं दंग होकर उनकी ओर देखता रह गया ।

बंबई के एक धनिक सज्जन यात्रा कर रहे थे । कई बार मिले तो जान-पहचान हो गई । दुबले-पतले बीमार-से थे । हम

लोगों ने यहां साथ-साथ चाय पी। फिर वह अपनी टोली में चले गये। थोड़ी देर में उनका नौकर दौड़ा आया। बोला, "सेठजी बहुत बीमार हो गये हैं। आपको बुला रहे हैं।"

मैं वहां पहुंचा तो देखा कि वह बिस्तर पर पड़े हैं और दिल जोर से धड़क रहा है। मैंने नाड़ी गिनी। करीब १३० निकली।

मैंने उन्हें समझाया कि थकान से ऐसा हो गया है। कुछ हल्का भोजन करके सो जाइये। उन्होंने ऐसा ही किया। सवेरे तक उनकी तबीयत सुधर गई।

तुंगनाथ जाने के लिए प्रायः यात्री रात को यहीं ठहरते हैं और प्रातःकाल उठकर चल देते हैं। चढ़ाई अधिक होने के कारण सबेरे का चलना सुविधाजनक होता है।

रात को चैन से सोये। सबेरे ४-१० पर तैयार होकर तुंगनाथ की ओर बढ़े। एक मील पर चोपता-चट्टी आई। यहां से एक रास्ता तुंगनाथ को जाता है, दूसरा सीधा भीमद्वार-चट्टी को। बहुत-से यात्री चढ़ाई के मारे तुंगनाथ को छोड़ देते हैं और सीधे भीमद्वार चले जाते हैं। तुंगनाथ से भी भीमद्वार ही जाना पड़ता है।

वाणियाकुंड से तुंगनाथ ४ मील है। उत्तराखंड की यात्रा में सबसे अधिक ऊंचाई पर यही मंदिर है—१२,०७२ फुट पर। ज्यों-ज्यों ऊपर चढ़ते जाते थे, एक-से-एक बढ़िया दृश्य दिखाई देते थे, मानो किसी चित्रकार ने पर्वत-मालाओं को चित्रित कर दिया हो। ऊंचे-नीचे पहाड़ों की पंक्तियों में सबके ऊपर थी बर्फ से ढकी एक लंबी गिरिमाला, जो प्रहरी की भांति खड़ी दिखाई देती थी। बिना स्वयं देखे उसके सौंदर्य की कल्पना नहीं की जा सकती। हम लोग आगे-आगे बढ़ते जाते थे, लेकिन कदम-कदम पर रुककर पीछे

भी देखते जाते थे। कितनी अद्भुत है प्रकृति की माया ! सृष्टि के जाने किन महान् क्षणों में प्रकृति ने गिरिराज हिमालय की रचना की होगी ! सहस्रों यात्री प्रति वर्ष यहां आते हैं और उसकी विराटता के दर्शन कर कितने आनंद का अनुभव करते है। मार्ग में एक ७२ वर्ष का वृद्ध मिला। सधे पैरों से, पग-पग पर सांस लेने के लिए रुकता हुआ, तुंगनाथ की ओर बढ़ा जा रहा था। और भी बहुत-से यात्री जा रहे थे। रास्ते के वृक्ष पुष्पों से सुशोभित हो रहे थे। जंगली गुलाब के फूल भी कई स्थानों पर खिले हुए थे।

लेकिन वृक्षों और पुष्पों की यह शोभा बहुत देर तक साथ नहीं दे सकी। जैसे-जैसे ऊंचाई बढ़ती गई, हरियाली कम होती गई और जब ऊपर पहुंचे तो ऐसा मालूम हुआ, किसी नई दुनिया में आ गये हैं। हरियाली पीछे छूट गई थी और अब नंगे पर्वतों का समूह चारों ओर था।

: २० :

तुंगनाथ

सवा सात बजे तुंगनाथ पहुंचे। उसकी जैसी प्रशंसा सुनी थी, उससे भी अधिक सुंदर उसे पाया। वह भारत में सबसे अधिक ऊंचाई पर स्थित हिन्दू-तीर्थ है। धार्मिक दृष्टि से इस स्थान का बड़ा महत्त्व है। यह तृतीय केदार है। यहां शिवजी का मंदिर है। शीत के दिनों में यहां की गद्दी मक्कू में चली जाती है। शिवजी का मंदिर सबसे ऊंची चोटी पर बना है। उसके आसपास और भी कई मंदिर हैं। मुख्य मंदिर में विष्णु और शिव की संयुक्त मूर्त्ति है। उसके पृष्ठ-भाग में वेदव्यास, शंकराचार्य आदि की मूर्त्तियां हैं। आकाश-गामिनी गंगा एक छोटे-से कुंड से निकलती है। उस कुंड के शीतल जल में यात्री स्नान करते हैं।

मंदिर के बाहर चबूतरे पर खड़े होकर जब सामने दृष्टि जाती है, तो यात्री आनंद-विभोर हो जाता है। नीचे तलहटी से लेकर ऊपर पर्वतों तक पहाड़ों की अनेक तहें दिखाई देती हैं। हिमश्रेणियों के दृश्य तो बड़े ही रमणीक मालूम होते हैं। उनमें वह देखिये गंगोत्री। उसके बराबर जो ऊंची चोटी है, वह यमुनोत्री है। उसी पंक्ति में कुछ फासले पर हिम का मुकुट धारे केदारनाथ का शिखर है। उसके बराबर है बदरीनाथ। ये सारी शृंखलाएं एक ही स्थान पर खड़े होकर एक ही पंक्ति में देखी जा सकती हैं।

हमारा यह दुर्लभ सौभाग्य था कि उस दिन आकाश में

बादल का नाम भी नहीं था और सूर्य खूब तेजी से चमक रहा था। इससे हम पर्वतों की उस माला को बड़ी अच्छी तरह से देख सके। कभी-कभी क्या, अक्सर ऐसा होता है कि यात्री ऊपर पहुंचते हैं कि बादल घिर आते हैं और तब वे पर्वत-शृंखलाएं दिखाई नहीं देतीं। बड़ी निराशा होती है। डर भी लगता है, कहीं वर्षा हो गई तो नीचे उतरना मुश्किल हो जायगा। ऊपर की सर्दी को वहां के रहनेवाले तो सहन कर लेते हैं, लेकिन बाहर से आनेवाले यात्री नहीं कर सकते। इसलिए प्रायः यात्री रात को यहां नहीं ठहरते हैं। मंदिरों के दर्शन किये, पूजा की और आगे बढ़ गये। मौसम खुला हो तो दो-एक दिन यहां ठहरने की व्यवस्था रखनी चाहिए।

सर्दी बहुत थी, पर ज्यों-ज्यों दिन बढ़ता गया, धूप तेज होती गई और सर्दी कम होती गई। एक ब्राह्मण बालक वाणियाकुंड से ही हम लोगों के साथ हो गया था। उसने पूजा कराई। पूजा के निमित्त सारा मंदिर अच्छी तरह से देख लिया। उसमें कई मूर्त्तियां बड़ी सुंदर हैं। मंदिर दाक्षिणात्य शैली का है।

दर्शन के बाद जलपान किया, सुस्ताये और आगे की यात्रा को चल दिये। आगे उतार-ही-उतार था। रास्ता सांप की भांति टेढ़ा-मेढ़ा, उबड़-खाबड़। छोटे-बड़े पत्थर रास्ते के बीच में बेहिसाब पड़े हुए थे। लाठी टेक-टेककर जैसे-तैसे आगे बढ़ते चले। लाठी फिसल जाय तो बिना प्रयास के नीचे पाताल में पहुंच जायं। देखकर रोमांच होता था। पेड़ का नाम-निशान न था। दाईं ओर सूखे-रूखे पर्वत, दूसरी ओर अंधेरी गहरी खाई। कभी ऊपर को देखते तो कभी नीचे को। आज भी वह दृश्य याद करके रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

: २१ :

गोपेश्वर में

दो मील का उतार सवा घंटे में पार करके ११॥ बजे भीम-द्वार-चट्टी पहुंचे और थोड़ी देर विश्राम करके फिर आगे बढ़े। चित्रपट की भांति अब दृश्य एकदम बदल गया। ऊंचे-ऊंचे पेड़ और उपत्यकाएं आने लगीं। इधर हरियाली खूब है और दूर-दूर तक फैली हुई है। २॥ मील चलकर पांगरबासा पहुंचे। उतार था और घना वन। रास्ता भारी नहीं लगा। आगे चार मील चलने पर मंडल-चट्टी आई। घना वन सारे रास्ते साथ रहा। इतना लंबा और इतना घना जंगल आगे कहीं भी नहीं मिला। लोगों का कहना था कि इस वन में कभी-कभी भालू तथा दूसरे जंगली जानवर मिल जाते हैं, लेकिन यात्रियों पर वे आक्रमण नहीं करते।

तुंगनाथ से आठ हजार फुट नीचे उतरे। मंडल-चट्टी कुल ४ हजार फुट की ऊंचाई पर है। बालखिल्य नदी की तलहटी में बसी है। यहां से ढाई मील पर अत्रि ऋषि की पत्नी अनसूया का मंदिर है, जहां साल में एक बार मेला लगता है। चमोली यहां से कुल ८॥ मील है। वहां से पीपलकोटी तक बस मिल जायगी। फिर ३८ मील पैदल चलकर बदरीनाथ पहुंचेंगे।

शाम को नदी में कपड़े धोये, अच्छी तरह स्नान किया। लौट-कर भोजन किया। रात को श्री आलमसिंह मिलने आये। यह इधर के अच्छे रचनात्मक कार्यकर्त्ता है। साहित्य-प्रेमी भी हैं। लोगों में पठन-पाठन के लिए रुचि उत्पन्न करने की दृष्टि से

एक पुस्तकालय खोल रखा है। बहुत देर तक बात करते रहे। यह प्रदेश बहुत ही पिछड़ा हुआ है। उनका कहना था कि कुछ सेवाभावी व्यक्ति यहां आवें और उन लोगों के बीच रहकर निःस्वार्थ भाव से काम करें, तब कुछ होगा। "लेकिन इतनी फुरसत किसे है! लोग मेहमान की तरह आते हैं और बड़ी-बड़ी बातें करके चले जाते हैं। इससे कुछ नहीं होने का!" उनकी बात में सचाई थी।

रात मंडलचट्टी में बिताकर अगले दिन सवेरे ५-१५ पर रवाना हुए। २ मील पर वैरागिनी और आगे उतने ही फासले पर सिरोखोमा-चट्टी मिली। अनंतर डेढ़ मील पर गोपेश्वर। सारा रास्ता उतार-चढ़ाव का था।

गोपेश्वर प्राचीन सिद्धस्थान है और उसके विशाल मंदिर में गोपेश्वर के नाम से शिवलिंग स्थापित है। मंदिर के आंगन में अष्टधातु का त्रिशूल है। उसपर तेरहवीं शताब्दी के दो नैपाली विजेताओं ने अपने अभिलेख खोदे थे, जो आज भी सुरक्षित हैं। त्रिशूल के एक ओर को नवग्रह हैं। स्कंद-पुराण में लिखा है कि इस स्थान पर महादेव ने काम को भस्म किया था। नीचे कुछ ही दूरी पर वैरागिनी नदी की धारा है, जिसमें यात्री स्नान करने का बड़ा माहात्म्य मानते हैं। गोपेश्वर में चतुर्थ केदार श्री रुद्रनाथ की गद्दी है। यहां मंदिर में पार्वती आदि की प्रतिमाएं हैं। व्यवस्था एक रावल महोदय द्वारा होती है, जो सरकारी नियंत्रण में होते हुए भी स्वतंत्ररूप से काम करते हैं। उत्तराखंड की यात्रा में जो सबसे विशाल मंदिर मिलते हैं, उनमें से यह एक है। पर यह मंदिर बड़ी ही जीर्ण अवस्था में है। कई जगह से टूट-फूट रहा है। ऊपर के भाग की वहां के लोगों

ने मिलकर मरम्मत कराई है, लेकिन उससे पूरी मजबूती नहीं हो पाई। अधिकारियों को तुरंत इस ओर ध्यान देना चाहिए। यहांपर बूटधारी सूर्य की अनेक प्रतिमाएं हैं।

गोपेश्वर पर शिव का राज्य समाप्त होकर आगे विष्णु का प्रारंभ हो जाता है। केदार-बदरी का यह मध्य-स्थान है।

हम लोगों ने मंदिर को अच्छी तरह से देखा। मूर्त्तियों के चित्र लिये। बड़े मंदिर के बाहर चबूतरे पर एक स्त्री और पुरुष हारमोनियम बजाते हुए गा रहे थे। स्त्री का स्वर बड़ा सुरीला था। उसने एक-दो गाने हिंदी के सुनाये। अच्छे लगे।

: २२ :

चमोली और पीपलकोटी

गोपेश्वर से तीन मील चलकर चमोली पहुंचे। यहां से पीपलकोटी तक बस जाती है। चमोली काफी बड़ी जगह है। तहसील, डाकघर, तारघर, चिकित्सालय, पुलिस चौकी, सबकुछ है। अलकनंदा अब फिर साथ हो गई।

चमोली पहुंचे उस समय ९। बजे थे। बहुत थकान हो रही थी। इसलिए सोचा कि थोड़ी देर धर्मशाला में आराम करें। इस बीच हममें से कोई जाकर डाक देख आवे। डाक के लिए यहां के पोस्टमास्टर का पता दे दिया था। धर्मशाला पहुंचे; पर वहां भीड़ बहुत थी। सब लोगों के आने पर तय किया कि अच्छा हो कि यहींपर भोजन से छुट्टी पा लें और सबसे पहले जो बस मिले, उससे पीपलकोटी चले चलें। वहीं रात को ठहरें। सामान तो सीधा बस के अड्डे पर भिजवाया और हम लोग भोजन के लिए किसी अच्छी दुकान या होटल की खोज में निकले। पूछने पर मालूम हुआ कि बस के अड्डे पर ही एक अच्छा ढाबा है। वहां पहुंचे तो देखा कि भोजन के लिए भीड़ लगी है। होटल की मेजें भरी हुई थीं। ज़रा-सी गुंजाइश हुई तो हम लोग बैठ गये। एक रुपया थाली तय हुआ। लेकिन खाने-वाले अधिक थे, परोसनेवाले उस हिसाब से कम और हरकोई जल्दी कर रहा था। खैर, जैसे-तैसे हम लोगों की बारी आई। बड़े मोटे चावल मिले। दाल-साग कम पड़ गये। जो और जितना मिला, पेट में डालकर बाहर आये। तबतक

बोझियों ने बस पर सामान चढ़ा दिया था। बस छूटने ही वाली थी। हम लोग दौड़कर उसमें बैठ गये।

चमोली को लाल सांगा भी कहते हैं। सांगा का अर्थ है 'पुल'। यहां का पुल लाल होने के कारण इधर के लोगों ने यह नाम रख दिया होगा। इस पुल को पार करके बस्ती में प्रवेश करते हैं।

यहां की ऊंचाई ३३०० फुट है। हरिद्वार से यह जगह १३६ मील है। वहां से बस सीधी आती है। लेकिन चूंकि हमें पहले केदारनाथ जाना था, इसलिए रुद्रप्रयाग गये और घूमकर यहां पहुंचे।

अलकनंदा के किनारे-किनारे १२ मील का सुंदर रास्ता तय करके करीब १२ बजे पीपलकोटी पहुंचे। बस की सड़क यहीं तक है। आगे जोशीमठ तक सड़क बन रही है। जब यह चालू हो जायगी तो बदरीनाथ के लिए कुल १९ मील पैदल चलना पड़ा करेगा।[1]

पीपलकोटी पहुंचते-पहुंचते जी हैरान हो गया। ठहरने को जगह मिलने पर बिस्तर खोल दिये और चुपचाप लेट गये। थकान के मारे नींद तो कहां आनी थी, पड़े-पड़े यात्रियों का शोर सुनते रहे।

धूप कम होने पर स्नान करने निकले। कुछ कपड़े भी धोने थे। बस्ती के बाहर कई नल लगे थे और नहाने की अच्छी व्यवस्था थी। कुछ दूर पर एक पतला-सा झरना भी बह रहा था। झरने पर स्त्रियों का जमघट था, इसलिए हम लोग नलों पर पहुंचे, जिनमें से बहुत थोड़ा-थोड़ा पानी आ रहा था।

[1] यह सड़क अब तैयार हो गई है और उसपर जीपें चलने लगी हैं।

कुछ देर प्रतीक्षा करने पर हमारी बारी आई। कपड़े धोने और नहाने में काफी समय लगा। भाभी (मार्तण्डजी की पत्नी) टोली की अन्य महिलाओं के साथ झरने पर चली गई थीं। हम लोगों ने छुट्टी पाई तबतक वे भी नहाने-धोने से निबट गईं। सब साथ-साथ अपने डेरे की ओर चले। रास्ते में भाभी को ध्यान आया कि उनका चश्मा झरने पर ही रह गया। मार्तण्डजी को साथ लेकर वह झरने पर वापस गईं। पर वहां जाकर देखा कि चश्मा नहीं है। अब क्या करें! बिना चश्मे के उन्हें बड़ी हैरानी होती और नया चश्मा बनने की सुविधा वहां थी नहीं। कुछ बच्चे वहां खेल रहे थे। उनसे पूछा तो उन्होंने इन्कार कर दिया। आखिर चश्मा गया कहां? कुछ लड़के पुल के पास थे। आगे बढ़कर उनसे पूछा तो उनमें से एक ने चश्मा निकालकर दे दिया। दिल को बड़ी तसल्ली हुई।

लौटकर शाम के खाने का डौल जमाया। कुछ लोगों का व्रत था। उनके लिए खोवे की चीजों की व्यवस्था हुई। एक आदमी से दूध का तय हुआ। जब वह दूध लेकर आया तो बड़ा ऊंचा मिजाज दिखाने लगा। जितना कहा था, नापने पर दूध उससे कम निकला। इसपर मार्तण्डजी को झुंझलाहट हुई। उन्होंने कहा, "हम दूध नहीं लेंगे।" वह बोला, "मैं-तो आपके लिए इंतजाम करके लाया हूं। लेना पड़ेगा।" इसपर बात और बढ़ गई। कहा-सुनी हो गई। आखिर मार्तण्डजी ने पैसे निकालकर उसके सामने पटक दिये और कहा, "तुम अपना दूध भी ले जाओ और ये पैसे भी।"

जैसे-तैसे मामला निपटा। इधर के लोगों में लालच बहुत है। शायद इसलिए कि यात्रा के छः महीनों में उन्हें सालभर के गुजारे

का प्रबंध कर लेना होता है। न करें तो जाड़े के दिनों में, जब कि आदमी तो क्या, परिंदा भी उधर दिखाई नहीं देता, वे क्या खायं।

पीपलकोटी छोटी-सी जगह है। बस्ती अधिक नहीं है, पर बदरीनाथ की यात्रा का बस का अंतिम अड्डा होने के कारण वहां काफी भीड़-भाड़ रहती है। मुसाफिरों की सुविधा के लिए तारघर और डाकखाना भी है। ३१०० फुट की ऊंचाई होने पर भी यहां बड़ी गर्मी थी।

दोपहर को हम जिस समय बस से उतरे थे, उसी समय दिल्ली की हरिजन-उद्योगशाला के कुछ छात्र और अध्यापक भी दूसरी बस से उतरे थे। वे सीधे हरिद्वार से आये थे। बातचीत में मालूम हुआ कि वे बदरीनाथ के मंदिर में प्रवेश करने जा रहे हैं। हमने पूछा कि अगर अधिकारियों ने अंदर नहीं जाने दिया तो ? उन्होंने जवाब दिया, "तो लौट आवेंगे।"

सुनकर मन में द्विविधा पैदा हुई। क्या उस अवस्था में हम लोगों का मंदिर में जाना उचित होगा ? आपस में चर्चा भी की। अंत में यह सोचकर समाधान किया कि बदरीनाथ पहुंचकर जैसी स्थिति सामने आवेगी, उसे देखकर निर्णय करेंगे।

: २३ :

बीहड़ रास्ते पर

पूरी तैयारी करके सोये, जिससे सवेरे जल्दी-से-जल्दी उठकर चल दें। पर रात को नींद बहुत कम आई। स्थान की तंगी थी। फिर यात्री एक-दो बजे तक शोर करते रहे। जरा देर को आंख लगी कि उठ बैठे। शौचादि से छुट्टी पाकर सवा चार पर रवाना होगये। चमोली से यहांतक १० मील बस में बैठ लिये थे, इसलिए चलना शुरू करने पर ऐसा लगा मानों पैदल-यात्रा का पुनः श्रीगणेश हुआ हो। कंधों पर वही सामान, हाथ में लाठी। पैर के छाले फूट चुके थे। चुस्ती से बदरीनाथ के रास्ते पर चल पड़े, अलकनंदा के किनारे-किनारे। कुछ दूर तक ख़ूब चौड़ी सड़क मिली।

चार मील का रास्ता आराम से कट गया। गरुड़गंगा पहुंचे, जो बड़ा सुंदर स्थान है। कहते हैं, यह गरुड़ की तपोभूमि है। विष्णु भगवान का वाहन होने के लिए यहां गरुड़ ने तपस्या की थी। पास ही 'गरुड़गंगा' नाम की छोटी-सी नदी बहती है। धार्मिक लोगों का मानना है कि यहां का पत्थर घर में रखने से सांप का डर नहीं रहता। जो हो, जगह अच्छी लगी। काफी यात्री गरुड़-कुण्ड में स्नान कर रहे थे। हम लोग तो धूप होने से पहले अधिक-से-अधिक रास्ता चल लेना चाहते थे। इसलिए थोड़ी देर रुक कर आगे बढ़े।

दो मील पर टंगणी और टंगणी से उतनी ही दूर पर पाताल-

गंगा-चट्टियां मिलीं। पाताल-गंगा के एक मील इधर से ही रास्ता बड़ा विकट है। चलते हुए डर लगता है। पहाड़ राख का-सा है और रास्ता इतना संकरा कि दो आदमी एक साथ नहीं चल सकते। पता नहीं, टट्टू और खच्चर उसे कैसे पार करते हैं। विष्णुभाई ने बताया कि पिछली बार जब वह बदरीनाथ गये थे तो यहीं पर उनकी टोली का एक खच्चर फिसलकर नीचे गिर गया था और यमलोक को सिधार गया था। बहुत-सा सामान चूर-चूर हो गया था। इस मार्ग के आरंभ होते ही टट्टूवाले यात्रियों को टट्टुओं पर से उतार देते हैं। एक और बड़ी भयंकर बात है। ऊपर से जब-तब छोटे-बड़े पत्थर लुढ़कते रहते हैं, जिससे यात्रियों को बड़ा खतरा रहता है। सिर पर पत्थर आ पड़ा तो हो गई यात्रा! बड़ी सावधानी से वहां से होकर निकलना पड़ता है। लोग जमा-जमाकर पैर रखते हैं और डर के मारे इधर-उधर नहीं देखते। दिल कांपता रहता है कि कहीं ऊपर से वज्रपात न हो जाय। हजारों यात्रियों के जीवन का प्रश्न है। अधिकारियों को चाहिए कि वे रास्ते को सुधारने के लिए शीघ्र ही कदम उठावें। बरसात के दिनों में यह रास्ता बंद हो जाता है। तब ऊपर से होकर तीन-चार मील का जो कठिन रास्ता गया है, वह काम आता है।

पातालगंगा तो सचमुच पाताल में है। उसकी निचाई के कारण ही यह नाम पड़ा होगा। गंगा इधर नदी को कहते हैं। पर्वतों का वक्ष चीरती हुई पातालगंगा बहती है। उसे पुल से पार करके आगे बढ़ते हैं। पुल पर पैर रखते ही दिल दहल उठता है। पुल कमजोर नहीं है, लेकिन वहां का दृश्य बड़ा डरावना है। पातालगंगा से ऊपर चलते हैं तो ऐसा लगता है, मानो स्वर्गारोहण हो रहा हो।

धूप में तेजी आगई। थकान होने लगी। दो मील और चलकर गुलाबकोटी चट्टी पर रुके। रास्ते में बहुत-से यात्री आते-जाते मिले। बदरीनाथ का मार्ग अपेक्षाकृत सुगम होने के कारण इधर यात्री अधिक आते हैं। रास्ते में संध्यारानी नाम की एक नौ वर्ष की बंगाली बालिका मिली। हाथ में लाठी लिये, धीरे-धीरे वापस लौट रही थी। बात की तो मालूम हुआ कि उसने केदारनाथ, त्रिजुगीनारायण, तुंगनाथ और बदरीनाथ की पूरी यात्रा पैदल की है। मैंने उसकी पीठ थपथपाकर शाबाशी दी। देर तक सोचता रहा कि हम लोग बच्चों की शक्ति का ठीक-ठीक अनुमान नहीं कर पाते और अपनी भ्रान्त धारणाओं से उन्हें दुर्बल और भीरु मानकर वैसा ही बना देते हैं।

गुलाबकोटी की ऊंचाई ५३०० फुट है। चट्टी छोटी-सी थी, पर वहां मक्खियों की भरमार थी। यहां पर हमें बदरीनाथ के असिस्टेंट रावल मिले। उनकी हाल ही में नियुक्ति हुई थी और वह सुदूर दक्षिण से पहली बार बदरीनाथ की यात्रा कर रहे थे।

भोजन-विश्राम के बाद पुनः चले। दो मील की चढ़ाई के बाद हेलंग या कुम्हार-चट्टी आई। इस चट्टी से एक मार्ग अलकनंदा के दूसरे किनारे पर दाहिनी ओर कल्पेश्वर—पंचम केदार—को गया है। कल्पेश्वर सघन वन के बीच बड़ा ही मनोरम स्थान है। कल्पेश्वर महादेव के मंदिर के अतिरिक्त वहां एक और मंदिर है।

हेलंग-चट्टी के निकट हेलंग नदी है। यहां का रास्ता बड़ा ही कठिन और भयावना है। एक मील और चलकर पैनी-चट्टी पहुंचे। वहां पहुंचते-पहुंचते पैर जवाब दे गये। अतः रात वहीं बिताने का निश्चय किया। छोटी-सी चट्टी थी, पर एकदम

सुनसान स्थान होने के कारण बड़ी शांति थी। अधिकांश यात्री आगे बढ़ गये थे। हम लोग रात को यहीं ठहरे। खूब जगह मिल गई। एक दुकानदार ने बढ़िया पूड़ियां बना दीं। खा-पीकर बातें करते रहे। फिर सो गये। खूब अच्छी नींद आई।

अगले दिन सवा चार बजे रवाना हुए। रास्ता बड़ा रमणीक था। जरा-सी देर में आगे निकल गये। खनौटी पहुंचे। वहां से एक मील पर भड़कुला और भड़कुला से दो मील पर सिंहधार चट्टियां आईं। मार्ग इतना सुहावना था कि हमारा आगे बढ़ने का उत्साह बढ़ता ही गया। चढ़ाई अधिक नहीं थी।

इस यात्रा में फल पीपलकोटी पर देखे थे और अब सिंहधार के छोटे-से बाजार में खूबानी और माल्टा दीख पड़े। पर बहुत मंहगे थे। खूबानी इधर ही पैदा होती हैं, पर एक आने की शायद एक या दो। माल्टा सूखा-सा छः आने का एक।

: २४ :

शंकराचार्य की साधना-स्थली में

एक मील और चलकर जोशीमठ पहुंचे। जोशीमठ ज्योतिर्मठ का बिगड़ा रूप है। यात्रियों में इस स्थान की बड़ी मानता है। बदरीनाथ मंदिर की यहां गद्दी है। शीतकाल में बदरीनाथ के पट बंद हो जाने पर, यहीं से बदरीनाथ की पूजा होती है। यहां वासुदेव, नरसिंह और गरुड़ के मंदिर हैं। नभोगंगा और दंड-धारा में यात्री स्नान करते हैं।

हम लोगों ने कालीकमलीवाले की धर्मशाला का पता लगा-कर उसमें डेरा जमाया। धर्मशाला के निकट ही एक वाचनालय था। वहां जाकर इतने दिन बाद अखबार पढ़े। कुछ समाचारों की चर्चा करते हुए स्नान करने कुंड पर पहुंचे। नहा-धोकर मंदिरों में दर्शन किये। नरसिंह की मूर्त्ति का एक हाथ बड़ा ही कृश है। इस संबंध में एक बड़ी रोचक कथा प्रचलित है। "उस प्रदेश के पुराने राजा वासुदेव का एक वंशज एक दिन जंगल में शिकार खेलने गया था। उसकी अनुपस्थिति में नरसिंहावतार विष्णु ने ब्राह्मण का रूप बनाकर महल में रानी से भोजन मांगा। रानी ने भोजन करा दिया। खाना खाने के बाद ब्राह्मण पलंग पर लेट गया। उसी समय राजा शिकार से लौट आया और अपने पलंग पर अपरिचित आदमी को सोया देखकर उसने क्रोध में उसकी बांह में तलवार मारी। लेकिन बांह से खून की जगह दूध निकला। राजा घबरा गया और क्षमा मांगने लगा। ब्राह्मण ने

कहा, "मैं नरसिंह हूं। मैं तुझसे प्रसन्न होकर तेरे दरबार में आया था। अब तूने जो यह अपराध किया है, उसका दण्ड तुझे भोगना ही पड़ेगा। तू इस सुन्दर ज्योतिर्धाम को छोड़कर कत्यूर (बैजनाथ) में जा बस। यह घाव तू मंदिर में अवस्थित नरसिंह की मूर्त्ति में भी देखेगा। जब वह मूर्त्ति गिरकर खण्ड-खण्ड हो जायगी और हाथ न रह जायगा तब तेरा वंश उच्छिन्न हो जायगा।" लोगों की आज भी धारणा है कि जब वह हाथ टूटकर गिर जायगा तो नर-नारायण पर्वत आपस में मिलकर बदरीनाथ का मार्ग अवरुद्ध कर देंगे। पर 'कुमारसंहिता' में उल्लेख है कि जबतक ज्योतिर्मठ में विष्णु विद्यमान हैं तबतक बदरीनाथ का मार्ग बंद नहीं होगा। हां, जिस दिन विष्णु की ज्योति उठ जायगी, बदरीनाथ मनुष्यों के लिए अगम्य हो जायगा। इसमें सचाई हो या न हो, लेकिन इतना मानना पड़ेगा कि यह स्थान बड़ा आनंददायक है। ऊंचाई ६१५० फुट है।

राहुलजी ने लिखा है, "जोशीमठ का उल्लेख नवीं-दसवीं शताब्दी के कत्यूरी शिलालेखों में 'जोशिका' (योषिको) के नाम से आया है। बदरीनाथ की बहियों में गांव का नाम जोशी है। यहां के पुराने निवासी जोशियाल कहलाते हैं। कहा जाता है कि जोशिका कत्यूरियों की राजधानी रही। कत्यूरी राज्य किसी समय सारे कुमाऊं-गढ़वाल तक ही नहीं, बल्कि शिमला तक फैला हुआ था।"

जोशीमठ के चारों ओर पर्वतों का परकोटा-सा है। बड़ा सुंदर लगता है। इस यात्रा में प्राकृतिक सौंदर्य का अनंत भण्डार दिखाई देता है। कहीं हरियाली अपनी शोभा दिखाती है तो कहीं नदी अपनी छटा से यात्रियों को मुग्ध करती है; कहीं पर्वत

अपनी विशालता से लोगों को अपनी ओर खींचते हैं तो कहीं निर्झर अपना कल-कल निनाद सुनाते हैं; कहीं पक्षियों की चह-चहाहट कानों में अमृत बरसाती है तो कहीं फूलों की मुस्कराहट दिल में गुद-गुदी पैदा करती है। निहारे जाओ प्रकृति को, सराहे जाओ उसकी कला को !

जोशीमठ से आधा मील ऊपर ज्योतेश्वर या सिद्धनाथ ज्योतिष्पीठ है। स्वामी शंकराचार्य ने चार दिशाओं में चार मठ स्थापित किये थे। उनमें से उत्तर का मठ इसी स्थान पर है। हम लोग गेहूं के लहलहाते खेतों के बीच होकर शंकराचार्य के मठ में पहुंचे। ऊंचाई पर बड़े ही सुंदर स्थान पर वह अवस्थित है। वहींपर आदिगुरु शंकराचार्य की गद्दी है। वहां मठ से संबंधित एक विशिष्ट साधु मिले। बहुत देर तक उन्होंने उपदेश दिया। वह प्रचारक अधिक जान पड़े। यहां शंकराचार्य की गद्दी के निकट यात्री किसी-न-किसी व्यसन का त्याग करते हैं। हमारे साथी घोरपड़ेजी ने सिगरेट का त्याग कर दिया।

मठ के निकट ही शहतूत का बहुत बड़ा वृक्ष है। कहते हैं, यह वृक्ष बड़ा पुराना है और इसीके नीचे स्वामी शंकराचार्य को शक्ति के दर्शन हुए थे। उसके पास ही देवी शक्ति का मंदिर है। जोशीमठ के मंदिरों में कुछ मूर्तियां बड़ी सुंदर थीं। नवदुर्गा के मंदिर में नवदुर्गा की मूर्त्तियां हैं। लोगों ने बताया कि यहां से बहुत-सी मूर्त्तियां गायब हो गईं। उनमें एक मूर्त्ति सूर्य की भी थी। कुल मिलाकर अन्य स्थानों की अपेक्षा यहां मूर्त्तियां कम हैं।

यहांपर गुलाब खिले हुए मिले। सेब आदि के बगीचे भी देखे।

ढाई बजे तक दर्शन, भोजन, विश्राम से छुट्टी पाकर फिर

आगे बढ़े ।

जोशीमठ बड़ी जगह है । छोटा-मोटा शहर-जैसा समझिये । अच्छा-खासा बाजार है । जूनियर हाईस्कूल, डाक-बंगला, अस्पताल, डाकघर, पुलिस-चौकी आदि सभी आधुनिक सुविधाएं उपलब्ध हैं ।

जोशीमठ से एक रास्ता पूर्व-उत्तर को होकर धोली नदी की घाटी को जाता है । ७ मील पर एक तपोवन है, जहां गरम पानी का कुण्ड है । वहां से १॥ मील पर भविष्य-बदरी का मंदिर है । यह स्थान पंच-बदरी में से है । इसी मार्ग से आगे कैलास और मानसरोवर को रास्ता जाता है । जोशीमठ से ४३ मील पर नीती गांव है, जो इस मार्ग पर भारत की सीमा की अंतिम बस्ती है । नीती से कैलास कुल १५८ मील है ।

जोशीमठ से आगे उतार था । हम लोग दौड़ते हुए चलने लगे; लेकिन थोड़ा चलने पर थक गये । फिर धीरे-धीरे बढ़े । दो मील के इस उतार ने परेशान कर दिया । विष्णु-प्रयाग पहुंचे, जहां अलकनंदा और विष्णुगंगा का संगम है । विष्णुगंगा को धौलीगंगा भी कहते हैं । यह नीती से आती है । विष्णुगंगा का जल बड़ा गंदला था । यहां भगवान विष्णु का मंदिर है ।

आगे का मार्ग अपने ढंग का निराला है । दोनों ओर ऊंची-ऊंची पर्वत-मालाएं हैं, जिनपर कहीं-कहीं पेड़ खड़े दिखाई देते हैं । सारा दृश्य डरावना लगता है । इतने ऊंचे पर्वतों के बीच नदी का कलकल निनाद और निर्जन पथ पर यात्रियों का आवागमन मन में विचित्र कल्पनाओं की सृष्टि करता है ।

विष्णु-प्रयाग पर थोड़ी देर रुककर आगे बढ़े । एक मील पर बलदौड़ा और उसके आगे ३ मील पर घाट-चट्टी आई ।

: २५ :

एक मनोरंजक प्रसंग

घाट-चट्टी पर पहुंचते-पहुंचते थक गये। पातालगंगा के उतार ने टांगों की वह हालत करदी थी कि कुछ न पूछिये। इसलिए तय किया कि रात को वहीं डेरा डालें।

विष्णुभाई और मैं पहले पहुंच गये थे। स्थान की व्यवस्था एक दुकान के ऊपर की। थोड़ी देर में टोली के बाकी लोग आ गये, सामान भी पहुंच गया। कमरा खूब बड़ा था। उसीमें सबने अपने-अपने बिस्तर खोल लिये।

पूड़ियां खाते-खाते तंग आ गये थे। सो खिचड़ी की व्यवस्था की गई। सबने भोजन किया। भोजन के बाद प्रार्थना करने के लिए इकट्ठे होनेवाले थे कि एकदम चिरंजीलालजी चिल्लाये, "भाईजी, भाईजी !"

उनकी आवाज में घबराहट थी। मैं पास ही था। मैंने पूछा, "क्या बात है ?"

"यह देखो, यह देखो।" उन्होंने अपने कुरते की जेब के नीचे के हिस्से की ओर इशारा करके कहा। लालटेन की धुंधली रोशनी में मैंने देखा कि वहां कुछ काला-काला है। उधर के लोगों ने बताया था कि इस चट्टी पर सांप-बिच्छू अक्सर मिल जाते हैं। अतः अनुमान हुआ कि वह बिच्छू है। चिरंजीलालजी भी यही समझ रहे थे। काला-काला देखकर यह भी अंदाज हुआ कि बिच्छू बड़ा जहरीला होगा।

अब क्या हो ? बिच्छू को पकड़ने के लिए पास में कुछ था नहीं। थोड़ी देर तक सोचते रहे कि क्या करें। चिरंजीलालजी बहुत हैरान तो नहीं हो रहे थे, फिर भी बिच्छू बिच्छू ही था और उसका डर स्वाभाविक था।

इस सबमें एक-दो मिनट निकल गये होंगे। मैंने देखा कि बिच्छू अपने स्थाम पर स्थिर बैठा है। इधर-उधर जरा भी हरकत नहीं कर रहा है। मैंने हिम्मत करके कुरते का एक हिस्सा पकड़ा और धीरे-से बिच्छू को झटक दिया। वह नीचे आ पड़ा। लेकिन तब भी उसने कोई हरकत न की। मैंने लालटेन को नजदीक लाकर देखा। देखकर ऐसे जोर की हंसी आई कि सब मेरी ओर देखने लगे। वह बिच्छू नहीं था, काले धागे में बंधी उनकी चाबी थी। जेब से कुछ निकालने में वह बाहर कुरते पर गिर पड़ी थी। हंसी के मारे सब लोटपोट होगये। चिरंजीलालजी की परेशानी अब दूर हो चुकी थी। इस मनोरंजन में उन्होंने भी खूब हिस्सा लिया।

लेकिन इस घटना का यह असर हुआ कि रातभर लालटेन जलती रही।

आधी रातगये अचानक शोभालालजी उठे। खटपट हुई तो हम लोगों की भी आंख खुल गई। पूछने पर उन्होंने बताया कि उन्हें ऐसी आवाज-सी आई है, जैसे किसी सांप ने चूहे या मेंढक को दबोच लिया हो। जिधर से आवाज आई थी, लालटेन लेकर उधर देखा, पर कुछ भी न मिला। उसके बाद सोते-जागते जैसे-तैसे वह रात कटी।

बदरीनाथ अब केवल १३ मील है। एक दिन का रास्ता रह गया है।

: २६ :

'चरैवेति चरैवेति'

सबेरे जल्दी ही घाट-चट्टी से रवाना हुए। धूप तेज होने से पहले यात्रा आनंद से हो जाती है। अतः हम लोगों का बराबर प्रयत्न रहता कि सूर्य देवता के उग्र होने से पहले ही जितना चल सकें, चल लें। २॥ मील चलकर पांडुकेश्वर पहुंचे। बीच में एक रास्ता अलकनंदा के झूले को पार करके सिखों के तीर्थ-स्थान हेमकुंड तथा 'पुष्पों की घाटी' को जाता है। हेमकुंड की ऊंचाई १४,२०० फुट है। लोगों का कहना है, वहां पूर्व-जन्म में गुरु गोविंद-सिंह ने तपस्या की थी। फूलों की घाटी 'पुष्पों का स्वर्ग' कहलाती है। कुछ लोग उसे 'नंदन-कानन' भी कहते हैं। मौसम में सैकड़ों किस्म के फूल वहां पर खिले रहते हैं। ऊंचाई लगभग १६,७०० फुट है। उस स्थान का अंतर्राष्ट्रीय महत्व है।

पांडुकेश्वर ६००० फुट की ऊंचाई पर है। बस्ती काफी बड़ी है। डाक-बंगला, धर्मशाला, डाकघर और बाजार होने के कारण रात को प्रायः यात्री वहीं ठहर जाते हैं। धार्मिक दृष्टि से भी उस जगह का बड़ा महत्व है। वासुदेव का मंदिर है और पंचबदरी में से एक योग बदरी का है। पांडवों ने इसे बनवाया था। प्राचीन कथा है कि महाराजा पांडु ने पूर्व-जन्म में मृग-रूपी मुनि को वाण से मारकर उनके शाप से दुखी होकर यहां तपस्या की थी। यह भी कहा जाता है कि यहांपर कुंती ने पांचों पांडवों को जन्म दिया था और यहींपर महाराज पांडु की मृत्यु हुई। यहांपर दो ताम्र-

पत्र हैं, लेकिन उन्हें अभी तक कोई पढ़ नहीं सका।

विष्णु-प्रयाग से यहांतक की भूमि बड़ी शस्यश्यामला है। खूब हरियाली है। रास्ता बड़ा नयनाभिराम है। अलकनंदा बड़ी तेजी से बहती है। रास्ते के दोनों ओर ऊंचे-ऊंचे वृक्ष और लताएं हैं। पुष्पों की महक हर घड़ी वहां के वातावरण में व्याप्त रहती है। प्रकृति की माया समझ में नहीं आती। जहां उदार होती है, वहां निहाल कर देती है। जहां क्रुद्ध होती है, वहां क्या मजाल कि हरियाली के नाम पर एक पत्ती भी दिखाई दे जाय। पर उसके सभी रूप बड़े प्यारे लगते हैं, उसके वैचित्र्य की अपनी महिमा है।

ढाई मील पर लामबगड़-चट्टी आई। यहां देवदार के जंगल हैं। लामबगड़ से ३ मील पर मिली हनुमान-चट्टी। हनुमान-चट्टी की ऊंचाई ८,००० फुट है। वहांपर घृतगंगा और अलक-नंदा का संगम है। कहते हैं, पूर्वकाल में यहां वैखानस मुनि का आश्रम था और महाराज मरुत ने यहां एक बहुत बड़ा यज्ञ किया था। बदरीनाथ के मार्ग में यही अंतिम पड़ाव है। आगे ५ मील में साढ़े तीन मील चढ़ाई-ही-चढ़ाई है।

हम लोग ९।। बजे के करीब हनुमान-चट्टी पहुंचे। सोचा कि वहां दोपहर को विश्राम करेंगे और शाम को चलकर बदरीनाथ पहुंचेंगे, लेकिन इतना धीरज अब कैसे हो सकता था ! एक दूकान पर झटपट खाना खाया और जबतक सामान पहुंचे कि लाठी-झोला उठाकर चल दिये। बहुत-से यात्री आ-जा रहे थे। जरा-जरा-सी देर में 'जय बदरीविशाल' का स्वर गूंज उठता था। लौटनेवाले यात्रियों के चेहरों पर थकान दीखती थी। हम उनसे बार-बार पूछते थे कि क्यों भाई, अब कितनी दूर है बदरीनाथ ?

चढ़ाई बहुत मुश्किल है क्या ? जगह कैसी है ? आदि-आदि। प्रत्येक यात्री हमारे उत्साह को बढ़ाता था।

ज्यों-ज्यों ऊपर चढ़ते जाते हैं, सर्दी बढ़ती जाती है और धूप सुहावनी लगती है। अब बर्फ खूब मिलने लगी। अलकनंदा की धारा कई जगह जमी हुई थी। उसमें कहीं-कहीं बर्फ टूट गई थी और नीचे बहती धारा बड़ी मोहक लगती थी। थोड़ा और आगे बढ़ने पर हिम-मंडित पर्वत मिलने लगे। केदारनाथ की अपेक्षा इधर झरने अधिक हैं। पहाड़ों के बीच में से निकलकर बहते हुए सफेद झरने ऐसे लगते हैं, जैसे दूध की धारा बह रही हो। सर्दी के कारण बहुत-से झरने जम जाते हैं। जान पड़ता है, किसीने सफ़ेद मोटी-पतली लकीरें खींचकर पर्वत पर चित्रकारी कर दी है। कई स्थानों पर बर्फ पर होकर चलना पड़ता है। कितनी ही बार बर्फ पर चल चुके हैं, लेकिन जब बर्फ आती है तो उसे तोड़कर लड्डू बनाने को हाथ एकदम लालायित हो उठते हैं। सर्दी है तो क्या ! हाथ ठिठुरते हैं तो ठिठुरें ! आनंद जो आता है ! बचपन एक बार फिर लौट आता है।

इधर के रहनेवालों का स्वास्थ्य बड़ा अच्छा है। रंग साफ और चेहरे लाल। स्त्रियां खूब गहने पहनती हैं, पर गंदगी बहुत है। शायद बरसों में ये लोग स्नान करते हैं। यहां दिखावा नहीं है और स्त्रियों में गजब का शील है। आप चुपचाप चित्र खींच लें तो बात अलग है, मालूम होने पर शायद ही कोई स्त्री चित्र खिंचवाने को राजी हो।

ज्यों-ज्यों मंजिल पूरी होती जा रही थी, मन एक अनिवर्चनीय आनंद से भरता जा रहा था। पैर कितने थक रहे थे, पर कंठ क्षण-क्षण में मुखरित हो उठते थे—'जय बदरीविशाल !'

हनुमान-चट्टी से तीन मील पर कांचनगंगा आई। ऊपर से नीचे तक सारी धारा जमी हुई थी। बर्फ पक्की और चिकनी। अन-भ्यस्त होने के कारण बहुत-से यात्री फिसल पड़ते हैं, पर दैवयोग से ढाल ऐसा नहीं है कि नीचे पाताल-दर्शन हो जाय, या जोर की चोट लग जाय। मजे की बात यह है कि गिरनेवाले रोते नहीं, खिलखिलाते हैं और साथ के लोगों के मनोरंजन का तो कहना ही क्या ! ऐसी सजीवता अन्यत्र दुर्लभ होती है। जहां प्रकृति हँसती हो, मानव का रोना शोभास्पद कैसे हो सकता है ?

यात्रियों की भीड़-की-भीड़ आ-जा रही थी। जो जा रहे थे, उनके हृदय उमंग से छलक रहे थे। उनकी मंजिल पूरी हो रही थी न ! जो लौट रहे थे, उनके चेहरों पर एक प्रकार की तृप्ति झलक रही थी।

: २७ :

पुरी में प्रवेश

कांचनगंगा से चलकर देवदर्शनी पहुंचे। वहां से बदरीनाथ पुरी दीखने लगती है। पुरी के प्रथम दर्शन से बड़ा आनंद मिला। कितने दिन की यात्रा के बाद यहां पहुंचे हैं। चारों ओर पहाड़-ही-पहाड़ हैं। उनकी तलहटी में किस शान से अलकनंदा बह रही है!

दो बजे थे उस समय। देवदर्शनी से जरा आगे निकले कि बड़े जोर का तूफान आया। यह हम लोगों की अंतिम परीक्षा थी। चारों ओर धूल छा गई। हम लोगों ने भागकर एक विश्रामालय में शरण ली। थोड़ी देर में प्रकृति का प्रकोप कम हुआ तो बाहर आये। सर्दी खूब पड़ रही थी। पुरी की ओर बढ़े। पुरी के इधर-उधर दो पर्वत प्रहरी की भांति खड़े थे, मानों नगर की रक्षा कर रहे हों। हमारे एक साथी ने बताया कि वे ही नर और नारायण पर्वत हैं।

अलकनंदा का पुल पार करके बस्ती के निकट पहुंचे। हृदय गद्गद् हो गया। ऋषिगंगा और अलकनंदा का यहां संगम है। ऋषिगंगा ऊंचाई से आती है। इसलिए खूब शोर मचाती है। अलकनंदा बड़ी ही शांत और धीर-गंभीर है।

ऋषिगंगा के पुल पर खड़े होकर यात्री एक बार सबकुछ भूल जाता है। जिधर निगाह जाती है उधर ही अटक जाती है। केदारनाथ की भांति यहां भी पर्वत वृक्षहीन हैं। फिर भी उनकी

अपनी शान है, अपनी गरिमा है। आश्चर्य होता है सारी दृश्यावली को देखकर। उससे भी अधिक विस्मय होता है यह सोचकर कि किस दूरदर्शी व्यक्ति ने सर्व-प्रथम इस स्थान की खोज की होगी और कौन होगा वह बड़भागी, जिसने इस स्थान को भारत के ही नहीं, दुनियाभर के आकर्षण का केंद्र बना दिया ? हजारों स्त्री, पुरुष और बच्चे जाने कहां-कहां से खिचकर यहां आते हैं और ऐसा अनुभव करते हैं, मानों उनके जीवन की साध पूरी हो गई। जरा उनके चेहरे की श्रद्धा-भक्ति के दर्शन कर लीजिए। आपका हृदय पुलक-पुलक उठेगा।

बदरीनाथ की बस्ती अच्छी खासी है। उपनगर-सा लगता है वह। पक्के मकान दूर-दूर तक फैले हुए हैं। हम लोग मंदिर-कमेटी के मंत्री श्री पुरुषोत्तम बगवाड़ी के यहां जाना चाहते थे। बाजार में हिंदी के पत्रकार श्री गोविंदप्रसाद नौटियाल अपनी पुस्तकों की दूकान पर मिल गये। घोरपड़ेजी का उनसे पहले से पत्र-व्यवहार चल रहा था। नौटियालजी ने अपना आदमी हमारे साथ कर दिया। इससे बगवाड़ीजी का मकान आसानी से मिल गया।

बगवाड़ीजी घर पर ही थे। उन्हें सूचना थी कि हम लोग एक दिन बाद पहुंचेंगे। इसलिए मंदिर-कमेटी के गैस्ट-हाऊस के हमारे लिए सुरक्षित दो कमरों में से एक में उन्होंने एक व्यक्ति को ठहरा दिया था। बह कुछ अजमंजस में पड़े, पर हमने उनसे कहा कि आप चिंता न करें, हम एक रात एक ही कमरे में काट लेंगे। अगले दिन तो दूसरा कमरा खाली हो ही जायगा। वह हमें साथ लेकर गैस्ट-हाऊस पहुंचे। वहां देखते क्या हैं कि हमारे मित्र तथा हिन्दी के पत्रकार श्री विश्वंभरसहाय 'प्रेमी' अपनी

पत्नी और पुत्री के साथ वहां विराजमान हैं और हमारा वाला कमरा उन्हींको दे दिया गया है। वह तो घर के ही आदमी थे। इसलिए हमें तनिक भी असुविधा नहीं हुई। सबने मिल कर एक परिवार की भांति व्यवस्था कर ली।

गैस्ट-हाउस मंदिर के पास ही बड़ी अच्छी जगह पर बना हुआ है। अलकनंदा का मधुर-निनाद बराबर सुनाई देता रहता है। वरांडे में बैठकर चारों ओर की हरियाली बड़ी मनोरम लगती है।

: २८ :

बद्रीनाथ में तीन रातें

हमारे बदरीनारायण पहुंच जाने के बाद टोली के शेष लोग लगभग पांच बजे पहुंचे। बोझी उसके भी घंटेभर बाद आये। पास में ही गरम पानी का कुंड था। सामान के आ जाने पर कुण्ड पर जाकर खूब स्नान किया। शाम को आरती में शामिल होने मंदिर में गये।

उस समय वहा यात्रियों की बड़ी भीड़ थी। स्थान की तंगी के कारण थोड़े-थोड़े लोग एक दरवाजे से अंदर जाते थे और कुछ देर दर्शन करके दूसरे दरवाजे से बाहर चले जाते थे। इस प्रकार यात्रियों का आना-जाना बराबर बना रहा। रावल-महोदय ने आरती के अनंतर बड़ी सावधानी से मूत्तियों पर से एक-एक करके सारे अलंकारादि उतारे और शयन-आरती करके पट बंद कर दिये। रावल तथा उनके सहयोगियों को छोड़कर कोई भी व्यक्ति मंदिर के गर्भ-गृह में नही जा सकता। हमें गर्भ-गृह के द्वार के निकट ही बिठा दिया गया। वहां से हम अंदर की सब चीजे अच्छी तरह देख सकते थे। एक बहन तो इतनी भक्ति-विह्वल हो गईं कि खड़ताल लेकर बार-बार मंदिर की परिक्रमा करने लगी। उन्हें देखकर मीरा का स्मरण हो आया। मंदिर में दर्शन करते समय उन बहन की आंखों से आंसुओं की धारा बह रही थी।

अपनी-अपनी श्रद्धा के अनुसार लोग चढावा चढा रहे थे।

कोई रुपया-पैसा चढ़ाता तो कोई चने की दाल आदि-आदि। बग-वाड़ीजी ने बताया कि सन् १९५३ में ८० हजार यात्री आये थे। इस बार भी हमारे पहुंचने तक १६,००० यात्री वंदना कर चुके थे।

आरती के साथ-साथ, बल्कि उससे कुछ पहले से, मंदिर के बाहर एक बरांडे में कीर्तन आरंभ हो जाता है। श्रीपर्वतीकरजी नाम के एक मराठा साधु वहां कई वर्ष से रहते हैं। रुद्रवीणा ऐसी बजाते हैं कि सुननेवाले मुग्ध रह जाते हैं। मौन रहते हैं और केवल कीर्तन में वीणा बजाते हुए भक्ति के बोल बोलते हैं। कीर्त्तन के स्वरों से वह निर्जन वनस्थली प्रतिदिन संध्या को गूंज उठती है। कीर्त्तन में लीन साधुओं की भाव-भंगिमा तथा यात्रियों की भावना देखते ही बनती है।

बदरीनाथ पुरी लंबी-चौड़ी है। यहां से वहां तक बाजार है, जिसमें खाने-पीने की चीजों के अतिरिक्त कपड़े, किताबें, फोटो का सामान, तांबे की मूर्तियां, मालाएं आदि बीसियों चीजें मिल जाती हैं। शिलाजीत, सुरमा आदि की भी कई दूकानें हैं। बिजली होने से बस्ती की शोभा और बढ़ गई है।

आरती के बाद बाजार में चक्कर लगाकर निवास-स्थान पर लौट आये। बदरीनाथ में तीन रात बिताने का माहात्म्य है। स्थान इतना भव्य है कि वहां तीन क्या, कई दिन रहने को जी करता है। हमने निश्चय किया कि तीन रात वहां रहेंगे। बातचीत करते-करते सो गये।

चलने की जल्दी नहीं थी, फिर भी इतने दिनों की पड़ी आदत के अनुसार अगले दिन सबेरे जल्दी ही आंख खुल गई। उठकर निवृत्त हुए, तप्तकुंड में स्नान किया। तत्पश्चात् मंदिर

में गये । मंदिर छोटा-सा है, मुगल शैली का । कहते हैं, वर्तमान मंदिर का निर्माण रामानुज सम्प्रदाय के स्वामी वरदराजजी की प्रेरणा से गढ़वाल-नरेश ने विक्रम की पंद्रहवीं शताब्दी में कराया था । मंदिर पर सोने का जो कलश है, वह इंदौर की रानी अहिल्याबाई का चढ़वाया हुआ है ।

मंदिर में प्रवेश करने के लिए विशाल और कलापूर्ण सिंह-द्वार है । अंदर घुसते ही दायें-बायें कुछ कमरे हैं, जिनमें से दाईं ओर को पर्वतीकरजी रहते हैं और बाईं ओर के कमरों में अखंड कीर्त्तन होता है ।

प्रवेश-द्वार के सामने मंदिर के प्रांगण में गरुड़ की मूर्त्ति है । बाईं ओर नर-नारायण और नारद तथा दाहिनी ओर उद्धव और गणेशजी के दर्शन होते हैं । एक ओर लक्ष्मीजी का मंदिर है, जिसके समीप ही भोग-प्रसाद का भंडार है । यहीं भगवान का भोग बनता है । इस भोग में छुआछूत का भेदभाव नहीं किया जाता ।

मंदिर के भीतर बदरीविशाल की ३ फुट ९ इंच के काले पत्थर की पद्मासनस्थ चतुर्भुजी मूर्त्ति है । उसके संबंध में लोगों की अलग-अलग धारणाएं हैं । वैष्णव उसे विष्णु की मूर्त्ति मानते हैं, शैव शिव की, शाक्त शक्ति की, जैन पार्श्वनाथ अथवा ऋषभदेव की, बौद्ध बुद्ध की, आदि-आदि, और सब अपनी-अपनी दृष्टि से अपने-अपने इष्टदेव की छवि उसमें देख लेते हैं । प्रतिमा की दो भुजाएं तो पद्मासन की मुद्रा में हैं । दो ऊपर की ओर जाती हैं । कंधे से ऊपर का भाग नहीं है । वहां सपाट पत्थर है । चंदन की बाड़ लगाकर दर्शकों को सिर का अनुमान करा दिया जाता है । बाहें खंडित हैं । वक्ष पर श्रीवत्स का चिह्न है ।

इस मूर्त्ति की बड़ी मानता है। सभी धर्मों और मत-मतान्तरों के लोग यहां आते हैं और दर्शन करते हैं।

इस मूर्त्ति के इधर-उधर और भी कई छोटी-बड़ी मूर्त्तियां हैं, जिनमें लक्ष्मी और सरस्वती की मूर्त्तियां प्रमुख हैं। मंदिर की किवाड़ों पर चांदी का खोल चढ़ा है। उसपर एक ओर जय की मूर्त्ति बनी है, दूसरी ओर विजय की।

मंदिर के बाहर साधु और भिखारियों की भीड़ इकट्ठी हो जाती है। बड़े ही करुण स्वर में वे यात्रियों से भीख की याचना करते हैं। बड़ा बुरा लगता है। तीर्थ-क्षेत्रों में लोगों की दान-पुण्य की वृत्ति ने लोगों को भिखमंगा बना दिया है।

बस्ती १०,२४३ फुट की ऊंचाई पर तीन मील लम्बी और एक मील चौड़ी उपत्यका में बसी है। उसके पश्चिम में नीलकंठ की हिमाच्छादित चोटी है। वह 'मध्य हिमालय की महारानी' के नाम से प्रसिद्ध है। उसकी ऊंचाई २१,६४० फुट है।

नीलकंठ के अतिरिक्त और भी कई दर्शनीय स्थान हैं। तप्तकुंड की चर्चा ऊपर आ चुकी है। वह अलकनंदा के तट पर है। 'वह्नितीर्थ' कहलाता है। उसके निकट ही अत्यंत शीतल जल की 'कूर्मधारा' है। नीचे बड़ी-बड़ी शिलाओं के बीच 'नारदकुंड' है। पास में 'ब्रह्मकुंड', 'गौरीकुंड' तथा 'सूर्यकुंड' गर्म जल के कुंड हैं। बदरीनाथ पुरी के अंतर्गत पंच-तीर्थ हैं—१. ऋषिगंगा, २. कूर्मधारा, ३. प्रह्लादधारा, ४. तप्तकुंड और ५. नारदकुंड। इसी प्रकार पंच-शिलाएं भी हैं—१. नारद-शिला, २. बाराह-शिला, ३. नरसिंह-शिला, ४. गरुड़-शिला और ५. मार्कण्डेय-शिला।

मंदिर से कुछ दूर पर 'ब्रह्मकपाल' है, जहां पितरों को पिंड और तर्पण दिये जाते हैं।

इस स्थान का नाम बदरिकाश्रम है। 'भूगोल जिला गढ़वाल' में इस स्थान के बारे में लिखा है, "यहां दो पर्वत अलकनंदा के दाहिनी और बाईं ओर हैं, जिनको नर और नारायण कहते हैं। इन्हीं पर्वतों के बीच की भूमि को बदरीनाथ कहते हैं। यहां एक प्रकार की झरबेरी, जिसको यहां के लोग 'भ्यूंग' कहते हैं, अधिक होती है, इसी से इसका नाम बदरीनाथ या बेरी का जंगल पड़ा।"

कहते हैं, नारद मुनि ने यहां तप किया था, अतः इस पुरी को नारद-क्षेत्र भी कहते हैं। कुछ लोग बदरीपुरी तथा विशालपुरी भी कहते हैं। बदरीविशाल की मूर्त्ति पौराणिक काल की मूर्त्ति बताई जाती है। जनश्रुति है कि नारद इसे पूजते थे। बौद्धकाल में इस मूर्त्ति को बौद्धों ने अलकनंदा में डाल दिया। सातवीं या आठवीं शताब्दी में भगवान की प्रेरणा से आदिगुरु शंकराचार्य दक्षिण भारत से यहां आये और उन्होंने इस मूर्त्ति का नारद-कुंड से उद्धार करके तप्तकुंड के पास गरुड़कोटि गुफा में प्रतिष्ठित कर दिया। चूंकि मूर्त्ति का उद्धार और प्रतिष्ठा दक्षिण के एक मनीषी के द्वारा हुई, इसलिए प्राचीन काल से ही यह नियम है कि बदरीनाथ की पूजा दक्षिण के नाम्बूद्री ब्राह्मणों के ही हाथों से होती रहेगी।

स्थान बहुत ही मनोरम है। चारों ओर बर्फ से ढंके हुए पर्वत हैं, जिनके बीच बसी हुई पुरी बड़ी भव्य मालूम होती है। प्रकृति की छटा को देखकर जी नहीं भरता। सूर्य की किरणें जब इस महान तपोवन के धवल शिखरों पर पड़ती हैं तो सहज ही विश्वास नहीं होता कि हम कोई वास्तविक दृश्य देख रहे हैं। सारा वायुमंडल स्वर्णिम हो उठता है। एक बार इतने जोर

का हिमपात हुआ कि पुरानी नगरी ध्वस्त होगई। नई का निर्माण हुआ। पुरानी नगरी के अवशेष आज भी वर्तमान पुरी के निकट दिखाई देते हैं।

अन्य दर्शनीय स्थानों में लगभग दो मील पर बदरीनाथ की माता मूर्त्तिदेवी का मंदिर है, जहां वामन-द्वादशी को हर साल मेला लगता है। दूसरा स्थान सतोपंथ है, जो १४,४०० फुट की ऊंचाई पर है। वहां पर बर्फ के पानी का एक बड़ा ही अच्छा सरोवर है—२ फर्लांग लंबा और १३०० फुट चौड़ा। यह बदरीनाथ से लगभग १४ मील की दूरी पर है। वहां जाते समय रास्ते में लक्ष्मीपुरी के पास अलकापुरी मिलती है, जहां आदिगंगा अलकनंदा का उद्गम है। दो मील पर अलकनंदा के बायें तट पर माणा नामक ग्राम है, जो १०,५६० फुट की ऊंचाई पर है। यह भारत और तिब्बत की सीमा का अंतिम ग्राम है।

: २९ :

रोचक कहानी

राहुलजी ने अपनी पुस्तक 'हिमालय-परिचय' (भाग १) में बगवाड़ीजी के चपरासी गंगासिंह दुरियाल से सुनकर बदरीनाथ की एक बड़ी ही रोचक कहानी दी है। यह कहानी परंपरा से वहां चली आती है और लोगों में खूब प्रचलित है।

लोकमान्यता है कि पहले बदरीनाथ सतलज के किनारे थोलिङ् नामक मठ में रहते थे। लामा लोग उनकी पूजा करते थे। लामा मांसाहारी थे। यह बात बदरीनाथ को बुरी लगती थी। वह तो शुद्ध आचारवाले थे। एक दिन जबकि लामा लोग दरवाजे बंद करके सो रहे थे, बदरीनाथ ने मंदिर के दरवाजे के ऊपर दीवार में छेद किया और निकल भागे। थोलिङ् मठ में वह छेद आज भी मौजूद है।

बदरीनाथ बहुत दूर नहीं निकल पाये थे कि लामा लोगों को पता लग गया और उन्होंने उनका पीछा किया। बदरीनाथ ने उन्हें देखा तो झट छोटा रूप धरकर एक चौंरी गाय की पूंछ में छिप गये। लामा लोगों ने उन्हें इधर-उधर बहुतेरा खोजा, लेकिन उनका अता-पता न मिला। चौंरी गाय के इस उपकार से अभिभूत होकर बदरीनाथ ने वरदान दिया कि आज से चौंरी गाय की पूंछ पवित्र मानी जायगी। तभी से उसकी पूंछ के चंवर बनाये जाते हैं और वे इतने पवित्र समझे जाने लगे कि देवताओं के ऊपर ढुलाये जाते हैं।

लामा लोगों के निराश होकर चले जाने पर बदरीनाथ फिर अपना असली रूप रखकर आगे बढ़े। लेकिन कुछ दूर जाने पर देखते क्या हैं कि लामा लोग फिर उनके पीछे चले आ रहे हैं। तब उन्होंने रास्ते में आग की एक बड़ी लंबी पंक्ति खड़ी कर दी, पर लामा लोग उससे भी न रुके। आग के मारे उनकी दाड़ी-मूंछें जल गईं। कहा जाता है कि इसी कारण से आज भी लामा लोगों के दाड़ी-मूंछें नहीं के बराबर होती हैं।

लामा लोग उनका पीछा करते ही गये। संयोग से बदरीनाथ के श्यामकर्ण घोड़ा हाथ आ गया। उसपर चढ़कर वह तेजी से भागे। लामा पिछड़ गये। माणा गांव के पास आकर बदरीनाथ ने घोड़ा छोड़ दिया। आज भी माणा गांव के पास चट्टान के रूप में उसकी स्मृति सुरक्षित है। माणा से बदरीनाथ कुल २ मील है।

उस समय शिव और पार्वती इस भूमि के स्वामी थे। उनका मंदिर तप्तकुण्ड के ऊपर कहीं था। आस-पास खेत थे, जिनमें बढ़िया चावल होता था।

इस सुंदर भूमि को देखकर बदरीनाथ का मन ललचा गया, पर वह तो शिव-पार्वती की संपत्ति थी और बलपूर्वक छीनी नहीं जा सकती थी। इसलिए उन्होंने एक चाल चली। पुरी के पास ही बांवणी नामक दुरियालों का गांव है। हाल के पैदा हुए एक बच्चे का रूप धारण करके बदरीनाथ वहां रोने लगे। शिव-पार्वती प्रातःकाल घूमने निकले थे। सुनसान में बच्चे का रुदन सुनकर पार्वती का हृदय विचलित हो गया। शिवजी के रोकते-रोकते उन्होंने बच्चे को गोद में उठा लिया। घर लाकर उन्होंने उसे मंदिर में रक्खा और स्वयं शिवजी के साथ तप्त-कुण्ड में स्नान करने चली गईं। स्नान करके लौटीं तो देखती

क्या हैं, मंदिर के किवाड़ भीतर से बंद हैं। उन्होंने बहुतेरा द्वार खटखटाया, आवाज दी, पर द्वार न खुला। शिवजी ने कहा, "देखा, मैंने कहा था कि धोखा खाओगी, पर तुम न मानीं।"

पार्वती ने गुस्से में भरकर कहा, "ठीक है। मैं इस तप्त-कुंड में बर्फ गिराकर उसे ठंडा कर दूंगी, जिससे उस शैतान को नहाने के लिए गर्म पानी न मिले।"

शिवजी ने कहा, "यह भी तुमने खूब सोचा ! इससे इसको उतनी हानि नहीं पहुंचेगी, जितनी यात्रियों को। वे बेचारे जाड़े में ठिठुरकर मर जायंगे।"

पार्वती ने शिवजी की बात मान ली, पर बदला लेने की भावना उनमें इतनी प्रबल थी कि उन्होंने शाप दिया कि आगे से इस भूमि में चावल की खेती नहीं होगी।

इसके बाद दोनों ने अपना घर छोड़कर नीचे का रास्ता लिया। जरा नीचे आकर जब वे कांचनगंगा को पार कर रहे थे तो देखते क्या हैं कि लोग पीठ पर लादकर कुछ लिये जा रहे हैं। पार्वती के पूछने पर उन्होंने बताया कि भगवान के लिए वे बासमती चावल ले जा रहे हैं।

पार्वती बड़ी दुखित हुईं। बोलीं, "मेरा शाप व्यर्थ गया। यहां तो और भी बढ़िया चावल आ रहा है।"

उधर बदरीनाथ अब मौज से रहने लगे। बढ़िया भोग लगता, शृंगार के लिए रत्नजड़ित आभूषण आते और केसर, कस्तूरी तथा अन्य बहुमूल्य वस्तुओं के चढ़ावे चढ़ते।

कुछ समय बाद बदरीनाथ के माता-पिता को पता लगा कि उनका लड़का बहुत अच्छी तरह से रह रहा है तो उन्होंने सोचा कि चलो, बुढ़ापे में हम भी आराम से बेटे के पास रहें। यह सोच

उस वुढ़ापे में दूर की मंजिल तय करके वे दोनों लड़के के घर आये। लेकिन बदरीनाथ तो अब बदल गये थे। उनकी पत्नी लक्ष्मी उनके पास आ गई थीं। उन्होंने सोचा कि मां-बाप सामने रहेंगे तो आजादी में बाधा पड़ेगी, इसलिए बदरीनाथ ने पिता को तो पांच मील दूर वसुधारा के प्रपात पर भेज दिया और मां को माणा के सामने माता-मूर्त्ति बनाकर बिटा दिया।

: ३० :

पौराणिक कथा

पुराणों में बदरीनाथ की और ही कथा मिलती है। कहते हैं, सृष्टि का निर्माण करनेवाले ब्रह्मा के बहुत-से लड़के थे, जिनमें एक का नाम दक्ष था। दक्ष के सोलह लड़कियां थीं। उनमें से तेरह का विवाह धर्मराज के साथ हुआ। लड़कियों में एक का नाम था श्रीमूर्त्ति या मातामूर्त्ति। उसके पेट से दो पुत्र उत्पन्न हुए—नर और नारायण। दोनों भाइयों में बड़ा प्रेम था। वे कभी एक-दूसरे से पृथक नहीं होते थे। नर छोटे थे, नारायण बड़े। वे दोनों अपनी मां को बहुत चाहते थे और उनकी खूब सेवा करते थे। उनकी सेवा से प्रसन्न होकर एक दिन मां ने कहा, "बेटा, तुम दोनों की सेवा से मैं बहुत प्रसन्न हूं। तुम जो चाहो मांगो। मैं तुम्हें वही दे दूंगी।"

दोनों भाई बड़े ऊंचे विचारों के थे। उन्होंने कहा, "हम दोनों वन में जाकर तप करना चाहते हैं। मां, तुम कुछ देना ही चाहती हो तो यही वरदान दो कि हम दोनों भाई सदा तपस्या करते रहें।"

मां वचन-बद्ध थी। उसे बेटों के बिछुड़ने की बात से दुख हुआ, पर अब क्या हो सकता था! उसने वर दे दिया।

मां का आशीर्वाद लेकर दोनों भाई हिमालय में पहुंचे और एक जगह बदरी (बेर) का वन देखकर रम गये। कंद-मूल-फल वहां थे। गंगा का तट था। झरने थे। चारों ओर बर्फ थी।

इस स्थान पर दोनों भाइयों ने कठोर तप किया। इनकी तपस्या को देखकर देवलोक के राजा इंद्र घबरा उठे। उन्हें डर लगा कि कहीं अपनी तपस्या के बल पर वे उसका इंद्रासन न छीन लें। अत: दोनों का तप भंग करने के लिए इंद्र ने मेनका आदि अप्सराओं को भेजा। उन्होंने पूरी तरह से प्रयत्न किया, लेकिन वे उनको तप से न डिगा सकीं। सालों बीत गये। एक दिन नारायण ने आंखें खोलीं। सबको देखा। अप्सराएं भयभीत हो उठीं। पर नारायण ने उन्हें आश्वासन दिया कि वे वहां रहें, उनकी कोई हानि न होगी।

इसके बाद, कहते हैं, उन्होंने आम की एक डाली लेकर अपनी जांघ मथी। उसमें से बहुत-सी अप्सराएं निकल पड़ीं। उन्हें देखकर देवलोक की अप्सराएं अपना सौंदर्य भूल गईं। नारायण की पैदा की हुई अप्सराओं में एक थी उर्वशी। उसके नाम पर बदरी-वन में आज भी उर्वशी-कुण्ड बना हुआ है। नारायण ने उर्वशी को देवलोक की अप्सराओं को दिया और कहा, "इसे अपने राजा इंद्र को हमारी ओर से दे देना।"

उर्वशी की सुंदरता को देखकर वे अप्सराएं लज्जित हो उठीं। वे उसे लेकर इंद्र के पास आईं। इंद्र ने जब उर्वशी के रूप को देखा तो वह आश्चर्य-चकित रह गये। उन्हें स्मरण हुआ कि वे दोनों भाई साधारण प्राणी नहीं हैं, भगवान के अवतार हैं।

दोनों भाई कलियुग तक वहीं तपस्या करते रहे। कलियुग आने का समय हुआ तो नारायण कृष्ण के और नर अर्जुन के रूप में प्रकट हुए। ऋषि-मुनियों ने उनसे प्रार्थना की कि आप बदरी-वन में निवास करें और एक ही रूप में अवतार लें। इसपर भगवान ने उनसे कहा, "हे मुनियो, अब कलिकाल आनेवाला

है। उसमें मेरा साक्षात दर्शन होना असंभव है। कलि-काल के कल्मष को मिटाने के लिए नारदकुंड में मेरी मूर्त्ति है। उसका उद्धार करो और वहां पर एक मंदिर बनवाकर मूर्त्ति को उसीमें प्रतिष्ठित कर दो।"

ऋषि-मुनियों ने यही किया। द्वापर में उन्होंने मूर्त्ति को कुंड में से निकाला और नारायण मुनि के कहने के अनुसार देवताओं के प्रधान शिल्पकार विश्वकर्मा से एक मंदिर बनवाकर उसे उसमें प्रतिष्ठित करा दिया। नारद इसके पुजारी नियुक्त हुए।

जब असुर यज्ञ करने को हुए तो भगवान ने उन्हें हराने के लिए बुद्ध का अवतार लिया। बौद्धों ने बदरी-नारायण की प्रतिमा को बुद्ध की समझकर उनकी पूजा प्रारंभ करदी।

आठवीं शताब्दी में कैलासवासी शंकर के अवतार शंकराचार्य ने जन्म लिया और बौद्धों को पराजित करके वहां से भगा दिया। जब वे भागे तो बदरीनाथ की मूर्त्ति को उठाकर नारद-कुंड में पटक गये।

शंकराचार्य ने जब देखा कि मूर्त्ति मंदिर में नहीं है तो ध्यानावस्थित होकर पता लगाया कि वह नारद-कुंड में पड़ी है। वहां से उन्होंने उसका उद्धार करके उसे पुनः स्थापित कर दिया।

: ३१ :

एक रोमांचकारी घटना

बदरीनाथपुरी में जो देखना था, देख चुके। तब आसपास की चीजों को देखने की सूझी। वहां से पांच मील पर वसुधारा की बड़ी प्रशंसा सुनी थी। लेकिन लोगों से बात की तो उन्होंने कहा, "क्या करेंगे वहां जाकर ? वहां का रास्ता बड़ा कठिन है और वहां प्रपात में पानी अधिक न होने के कारण उसमें कोई विशेष आकर्षण भी नहीं है।" फिर भी वहां जाये बिना मन न माना। वैसे भी उस जगह की बड़ी मानता है। जो लोग बदरीनाथ आते हैं, वे वसुधारा जरूर जाते हैं।

दस मील का आना-जाना था। दो बजे से पहले नहीं लौट सकते थे। इसलिए साथ में कुछ पूड़ियां और साग लेकर एक दिन प्रातःकाल हमारी टोली वसुधारा की ओर रवाना हुई। अलकनंदा के किनारे-किनारे आगे बढ़े। चारों ओर धवल शिखर थे। खेतों में भोटा स्त्रियां काम कर रही थीं।

दो मील पर माणा गांव आया। बस्ती बड़ी छोटी-सी है, कुछ ही घर हैं, पर वहां की प्राकृतिक छटा देखते ही बनती है। अलकनंदा को पुल से पार करके गांव में प्रवेश करते हैं। पुल इतना हिलता है कि अगर कोई कच्चे दिल का यात्री हो तो घबरा जाय। पुल से जरा आगे सरस्वती और अलकनंदा का संगम है, जिसे 'केशव प्रयाग' कहते हैं। माणा में एक उद्योग-केंद्र है, जहां कुछ स्त्री-पुरुष बुनाई का काम कर रहे थे। उद्योग-धंधों को प्रोत्साहन देने

के लिए कुछ सरकारी और सार्वजनिक उद्योग-केंद्र सीमान्त के इस पार्वत्य प्रदेश में कई स्थानों पर खोले गये हैं।

गांव से कुछ गज पर 'भीम-शिला' आई, जिसपर होकर सरस्वती नदी को पार किया। यह विशाल शिला भी प्रकृति का एक अद्भुत चमत्कार है। स्वतः ही शिला के दोनों छोर नदी के दोनों किनारों पर टिक गये हैं और वह प्राकृतिक पुल का काम देती है। नीचे नदी की धारा बड़ी तेजी से बहती है।

शिला पर चले तब तो कुछ नहीं लगा, पर जब उधर खड़े होकर उस पुल को देखा तो रोमांच हो आया। भीमशिला के निकट ही 'गणेश-गुफा' और 'व्यास-गुफा' हैं। कहते हैं, भगवान व्यास ने इसी व्यास-गुफा में श्रीमद्भागवत की रचना की थी।

आगे का मार्ग बड़ा कठिन था और ऊबड़-खाबड़ भी। अलकनंदा बर्फ से जमी थी। जिधर देखो, उधर बर्फ-ही-बर्फ। लगभग एक मील और आगे बढ़ने पर इस रास्ते में पहली बार बर्फ पार की। बार-बार पैर फिसलते थे। बड़ी सावधानी से पैर जमाकर और लाठी टिकाकर उस पर से गुजरे। उस हिमानी का काफ़ी चौड़ा पाट था। पार करते-करते जूतों के तले भीग गये। मोज़ों तक पानी पहुंच गया। पैर ठिठुरने लगे। ऊंचाई अधिक होने के कारण ठंड भी बहुत थी।

सामने एक हिममंडित पर्वत था, जिसका शिखर तिकोना था। बर्फ के कारण वह ऐसा जान पड़ता था, मानो किसी ने चांदी का मुकुट पहना दिया हो। उसके ऊपर कुछ बादल अठखेलियां कर रहे थे। उस दृश्य की अलौकिकता आज भी नहीं भूलती। अलकनंदा की धारा सहमकर बर्फ के नीचे छिप गई थी, पर उसके
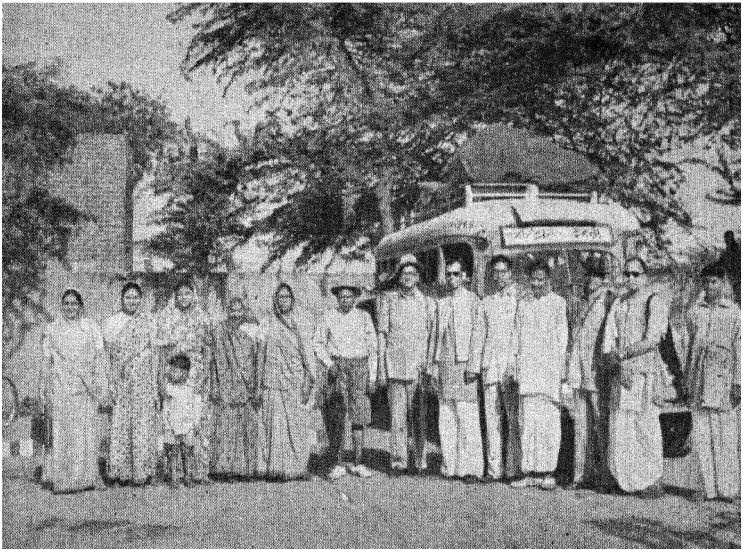
दिल्ली से प्रस्थान

हरिद्वार पहुंचे
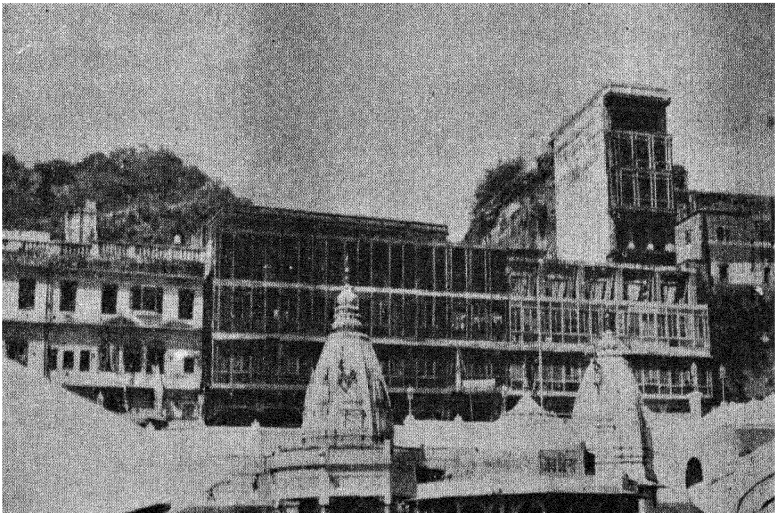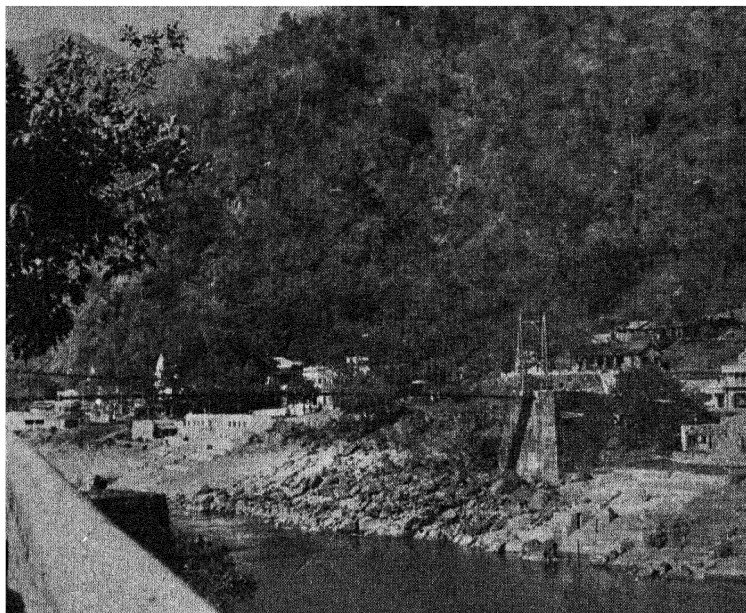
लक्ष्मण झूला

देवप्रयाग
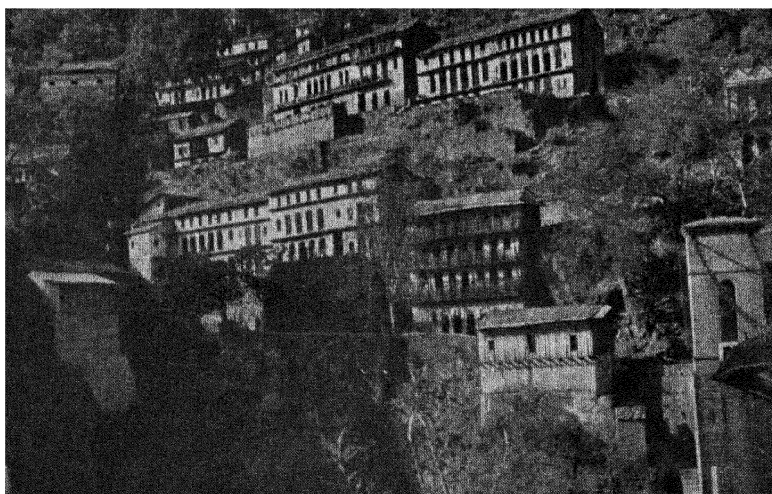
रुद्रप्रयाग

पैदल-यात्रा का आरम्भ
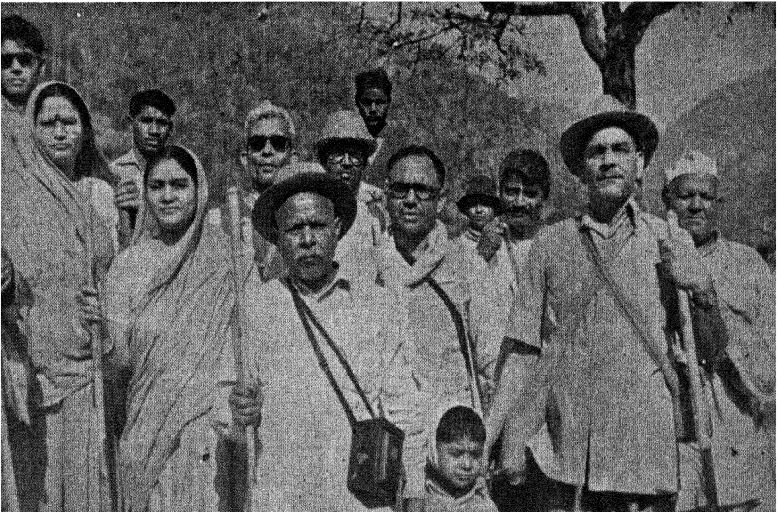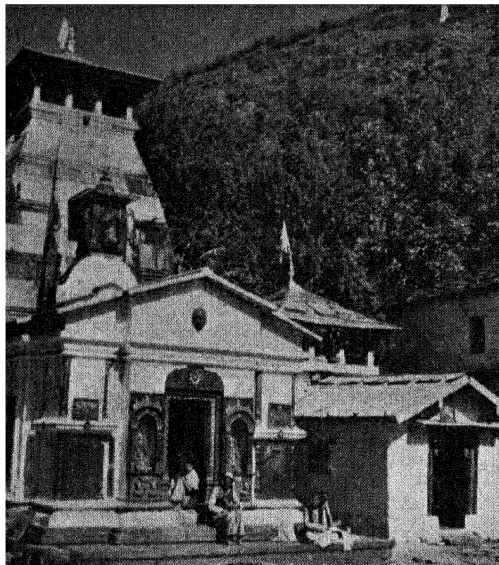
गुप्तकाशी

गौरीकुंड
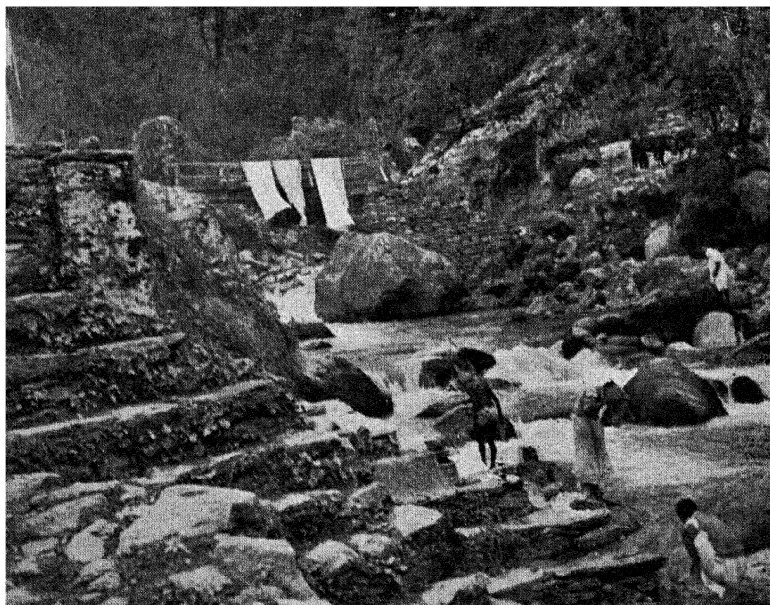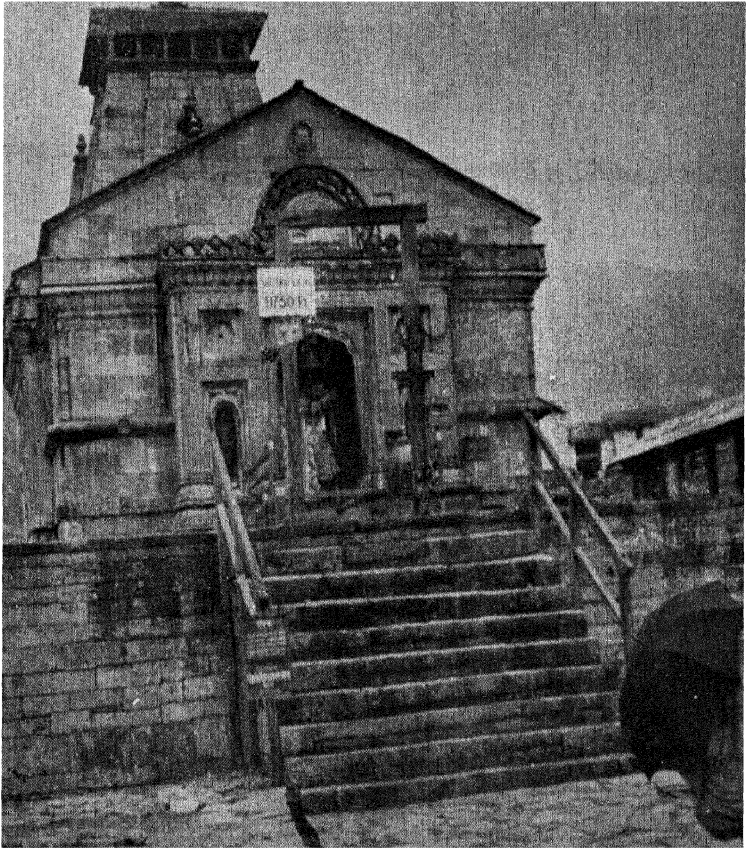
केदारनाथ का मंदिर
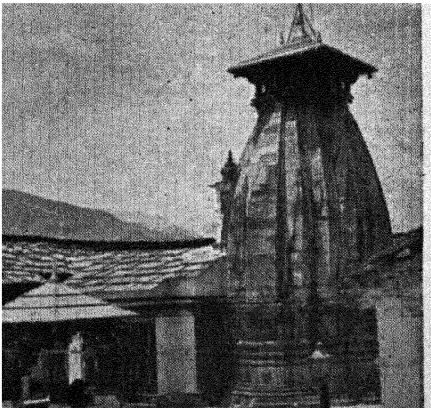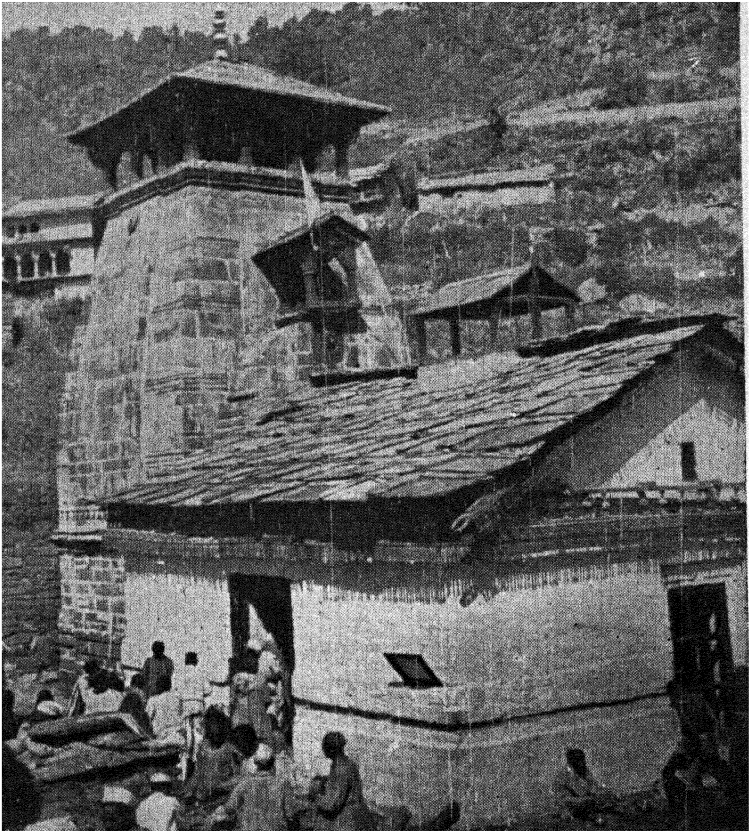
त्रिजुगीनारायण

ऊखीमठ
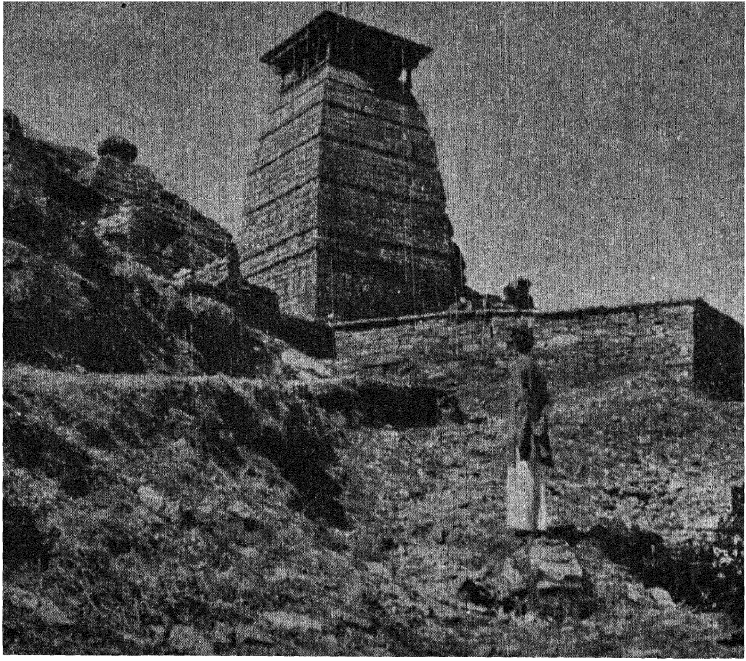
तुंगनाथ का मंदिर

तुंगनाथ के दो सुन्दर दृश्य
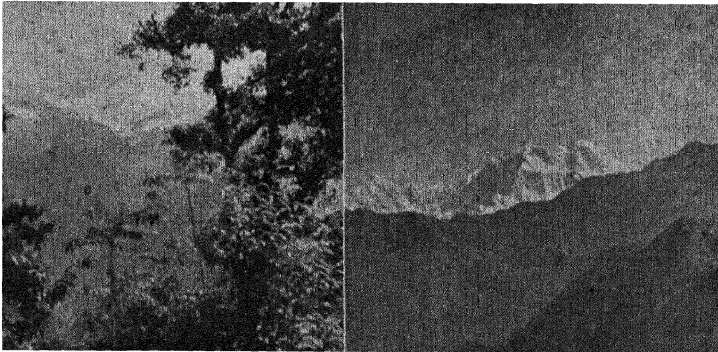
गरुड़ चट्टी

पातालगंग
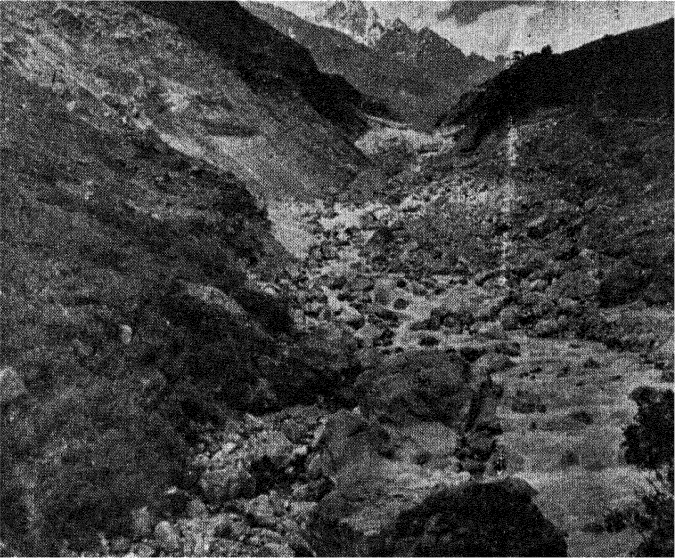
उबड़-खाबड़ मार्ग

डरावने पुल
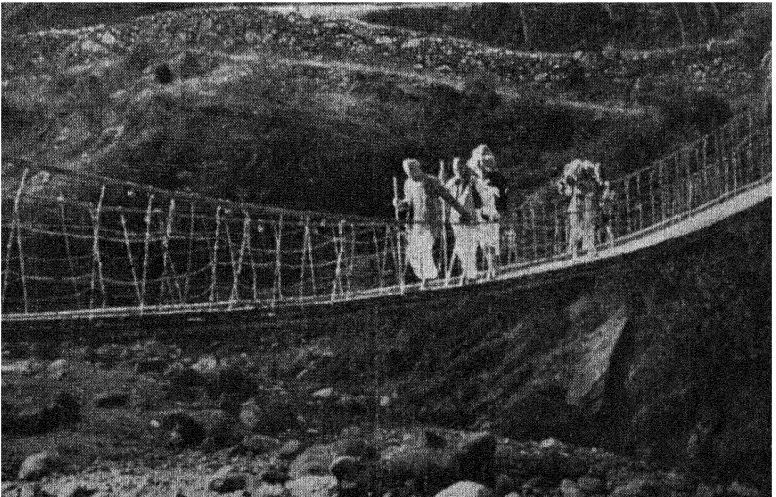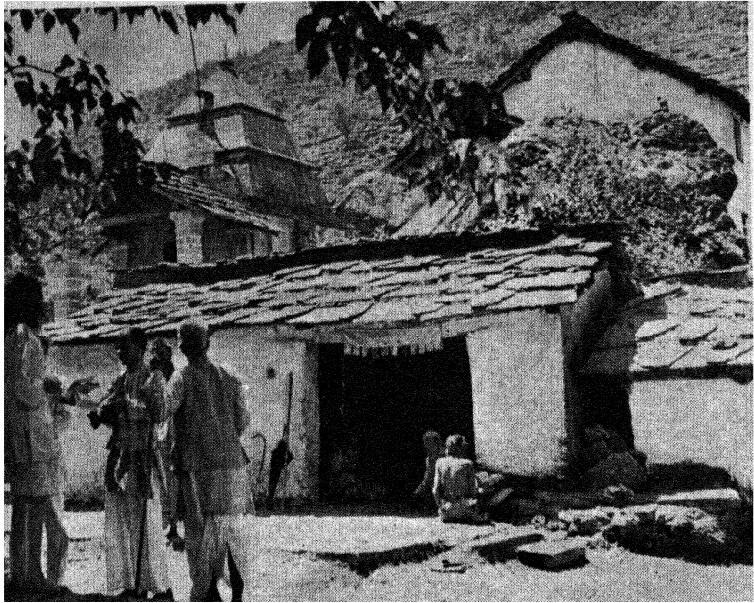
राचार्य की साधना-स्थली : जोशीमठ

बदरीनाथ पुरी

बदरीनाथ का मंदिर

श्रद्धालु यात्री
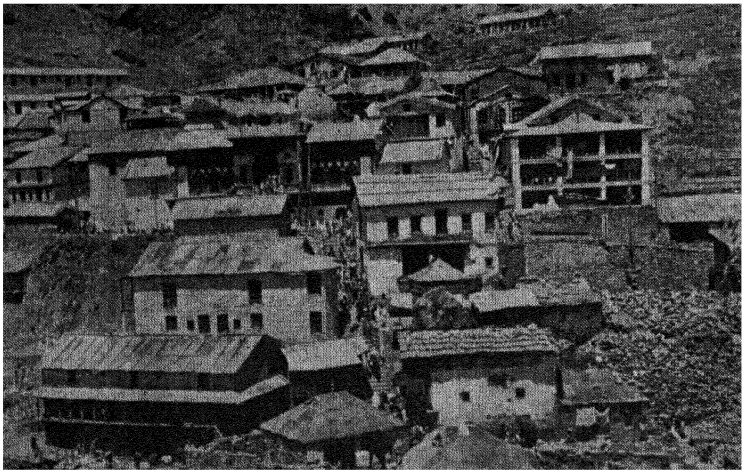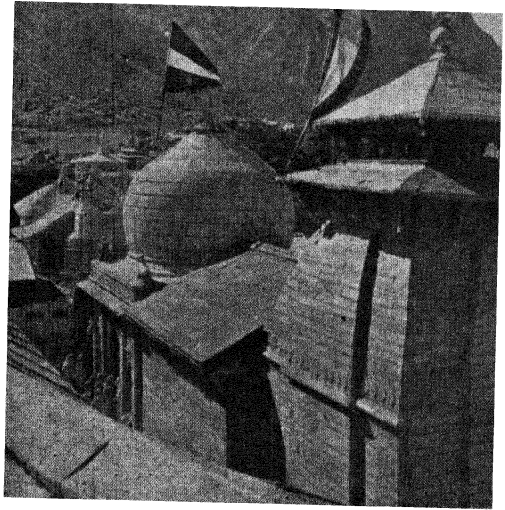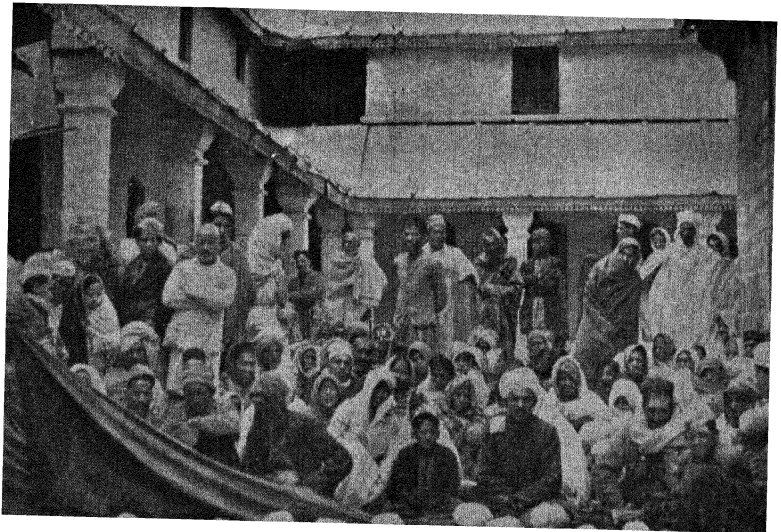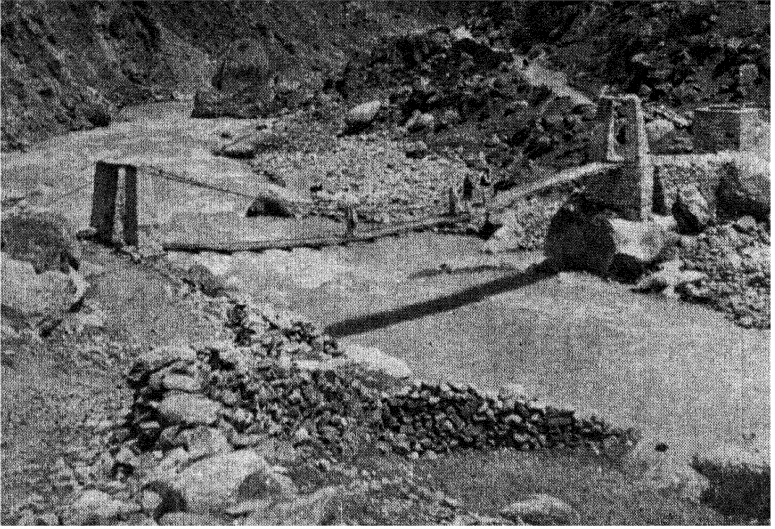
भारत ग्रौर तिब्बत के बीच का मार्ग : माणा गांव

वसधारा

स्वरूप की झांकी दिखाने के लिए दो-एक झरने पर्वत के वक्ष से फूट रहे थे।

ग्यारह बजे के लगभग वसुधारा पहुंचे। अब हम १२,००० फुट पर थे। ४०० फुट की ऊंचाई से दो धाराएं गिर रही थीं और नीचे बर्फ का एक विशाल पर्वत था। प्रपात के निकट ही ऊपर एक गुफा-सी दिखाई देती थी।

विष्णुभाई ने बताया कि यहां के बारे में एक दंत-कथा है कि जिस व्यक्ति पर इस झरने की बूंदें नहीं पड़तीं, वह वर्ण-संकर-संतान होता है। सुनकर हमें बड़ी हँसी आई।

अपना सामान नीचे छोड़कर हम बर्फ के पहाड़ पर चढ़ने चले। जहां बर्फ कच्ची थी, वहां हमारे पैर धंसते थे और लाठी हाथ-हाथ भर नीचे चली जाती थी। जहां बर्फ कड़ी थी, वहां पैर फिसलते थे। एक बार तो ऐसा लगा कि ऊपर पहुंचना शायद ही संभव हो सके, लेकिन हिम्मत करके चढ़ते ही चले गये। चार साथी पहले ही घुटने टेक गये। थोड़ा चढ़कर वे लौट गये। ऊपर एक ओर को जमीन थी। बर्फ पार कर थोड़ी देर के लिए वहां खड़े हो गये। हम लोगों का इरादा तो ठेठ धारा तक पहुंचने का था। फिर साहस किया। लाठी को अच्छी तरह बर्फ में गाड़ लेते थे, उसके सहारे कुछ कदम आगे बढ़ते थे, फिर लाठी को खींचकर दूसरी जगह जमाते थे। बार-बार लगता था, अब फिसले, अब फिसले। फिसलने का मतलब होता सैकड़ों गज नीचे पहुंच जाना। भगवान का नाम लेकर आखिर हम चार जने धारा के निकट पहुंच ही गये। वहां देखते क्या हैं, पहाड़ के सहारे पानी गिरने के कारण लगभग गजभर चौड़ी खाई-सी बन गई है। यदि कोई उसमें गिर जाय तो पता भी न चले।

ऊपर पहुंचकर हम लोग नीचे के साथियों का ध्यान आकर्षित करने के लिए लगे शोर मचाने। इतने में हवा का झोंका आया और पानी की धारा हम लोगों के ऊपर आ गिरी। सारे कपड़े भीग गये। सर्दी के मारे पहले ही से कांप रहे थे। उधर जूते-मोज़े भीग जाने के कारण पैर कटे जा रहे थे। अब आ पड़ा ऊपर से पानी! पानी में सराबोर हो जाने के कारण कुछ घबराहट-सी होने लगी। हे भगवान, अच्छी तरह नीचे उतर जायं! दो साथी मुझसे पहले उतरने लगे, उनके पीछे मैं, फिर एक और साथी। कुछ गज़ उतर चुके तो अचानक देखता क्या हूं कि आखिरी साथी ऊपर से लुढ़के, ठीक मेरी सीध में। लगा कि अपनी लपेट में वह मुझे भी लेंगे और हम दोनों बिना प्रयास के नीचे पाताल में पहुंच जायंगे। शरीर एकदम कांप गया। अब ? पर घबराने का अवसर कहां था! तत्काल मैंने अपनेको संभाला और लाठी को जोर से बर्फ में जमाकर साथी का स्वागत करने के लिए तैयार हो गया। जैसे ही वह निकट आये, मैंने उनकी टांग पकड़ ली। वह रुके और रुकने के साथ ही उन्होंने बर्फ में हाथ गाड़ दिये। संभल गये। दुर्घटना होते-होते बच गई।

नीचे आकर खूब हँसे। वसुधारा न गये होते तो इस रोमांचकारी अनुभव से वंचित रह जाते।

लौटते में रास्ता उतना भारी नहीं पड़ा। २।।-३ बजे के लगभग बदरीनाथ पहुंचे।

: ३२ :

पुण्यधाम में अन्तिम दिन

वसुधारा आने-जाने में काफी थकान हो गई थी, लेकिन सुंदर दृश्यों का स्मरण करके मन पुलकित हो रहा था। डेरे पर पहुंचकर कुछ देर विश्राम करके रावलमहोदय से मिलने गये। मंदिर के अहाते में मथुरा की एक मंडली रास दिखा रही थी। रावलजी आदि वहीं थे। यात्रियों की बड़ी भीड़ थी। बहुत देर तक रासलीला देखते रहे। बड़ा रस आया। बीच-बीच में स्त्रियां उठ-उठकर कृष्ण की न्यौछावर करती थीं, उनपर चढ़ावा चढ़ाती थीं। उससे रास में बाधा पड़ती थी, लेकिन भोले-भाले यात्रियों की भक्ति-भावना को रोका भी कैसे जा सकता था ?

शाम को आरती में सम्मिलित हुए। फिर रावलजी के साथ उनके निवास पर चले गये। रावल केरल के नाम्बूद्री ब्राह्मण थे, बड़े भले और मिलनसार। बड़े प्रेम से उन्होंने हमें बिठाया और पूजा के कपड़े उतारकर हम लोगों के बीच बैठकर बातें करने लगे। लगभग घंटेभर उनसे चर्चा होती रही। उनसे जब हमने मूर्त्ति के विषय में पूछा तो उन्होंने कहा, "यह कहना बड़ा कठिन है कि वह किसकी है। सभी धर्मवाले उसे अपनी-अपनी मानते हैं। लेकिन इसमें संदेह नहीं कि मूर्त्ति की महिमा निराली हैं। सभी मान्यताओंवाले यात्री यहां आते हैं और उस मूर्त्ति के प्रति इतनी श्रद्धा और भक्ति प्रकट करते हैं कि कुछ न पूछिये।" रावलमहोदय ने यह भी बताया कि छः महीने जबतक वहां पूजा होती है, वे

बदरीनाथ रहते हैं, अनंतर दक्षिण चले जाते हैं।[1]

उस पुण्यधाम में वह अंतिम दिन था। अगले दिन तो सवेरे चल ही देना था। सो खूब घूमे। यात्रियों की उमड़ती हुई भक्ति-भावना के दर्शन किये और वहां के प्राकृतिक सौंदर्य को आंखों में भरा। वह स्थान इतना भव्य है, इतना रमणीक कि उसका वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता।

केदारनाथ की अपेक्षा यहां का मौसम अधिक सुहावना है। केदारनाथ में सर्दी के मारे दांत कटकटाते थे और एक रात काटना मुश्किल हो गया था। यहां वह बात नहीं थी। सर्दी तंग करनेवाली नहीं थी, बल्कि बाहर घूमने में आनंद आता था। तीन दिन ऐसे निकल गये कि मालूम भी न पड़े। रोज सवेरे तप्तकुंड में स्नान करते थे। भोजन का काम मंदिर की ओर से प्राप्त होनेवाले प्रसाद से चल जाता था। दिन भर का पूरा समय घूमने में जाता था। शाम को पर्वतीकरजी तथा अन्य साधु कीर्त्तन कराते थे। आरती होती थी।

हमारी बड़ी इच्छा थी कि कुछ साधुओं के दर्शन करें और उनके साथ धर्म-चर्चा का लाभ लें, लेकिन बहुत प्रयत्न करने पर भी किसी योग्य साधु के दर्शन न हुए। लोगों से पूछने पर मालूम हुआ कि अच्छे साधु तो गंगोत्री-यमुनोत्री के मार्ग में मिलते हैं।

यात्रियों का यहां तांता लगा रहता है। भारत के ही नहीं, विदेशों के लोग भी यहां आते-जाते रहते हैं। चढ़ावा खूब चढ़ता है। सवेरे की पूजा के बाद अपराह्न में मंदिर के अहाते में सारा चढ़ावा एकत्र करके रुपये-पैसे गिने जाते हैं। ढेर लग जाता है।

[1] खेद है कि इन युवक रावल महोदय का चेचक से वाराणसी में देहांत हो गया।

आखिर लोग इतनी लंबी-लंबी यात्राएं काफी खर्च करके आते हैं तो चढ़ावा भी अपनी सामर्थ्य के अनुसार दिल खोलकर चढ़ाते हैं। यह सब आय मंदिर के काम आती है।

रात को १०-११ बजे तक बस्ती में चहल-पहल रहती है। फिर सारी नगरी शांत हो जाती है। एकांत चिंतन के लिए वह समय सर्वोत्तम होता है। नदी के तटवर्त्ती किसी घाट पर जा बैठिये और अपनी कल्पना को निरंकुश छोड़ दीजिये। बड़ा आनंद आयगा।

इस यात्रा में सबसे अधिक समय बदरीनाथ में ही ठहरे। फिर भी तृप्ति नहीं हुई। जी करता था, दो-एक दिन और ठहर जायं तो अच्छा है।

: ३३ :

वापसी

तीन रात ठहरने के बाद तय हुआ कि अगले दिन आठ बजे वहां से कूच कर किया जाय। सवेरे खूब जल्दी आंख खुल गई। हाथ-मुंह धोकर तप्तकुंड में स्नान किया, मंदिर गये, सामान संभाला और ७॥ बजे चलने को तैयार हो गये। बगवाड़ीजी को धन्यवाद दिया तो वह कहने लगे कि इस शिष्टाचार की आवश्यकता नहीं है। अगली बार फिर आइये।

हरिजन-उद्योग-शाला, दिल्ली की जो टोली दर्शन के लिए आई थी, उसमें कई भाई परिचित थे। यहां आने पर हम लोगों में उत्सुकता हुई कि देखें, अधिकारी लोग हरिजन भाइयों को मंदिर में जाने देते हैं या नहीं। लेकिन कोई बात न हुई। सबने बड़ी अच्छी तरह से दर्शन किये, मंदिर के प्रांगण में कीर्तन किया। बगवाड़ीजी की दूरदर्शिता को देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। हरिजन-छात्रों में से कुछ जल्दी ही लौट गये थे, कुछ हम लोगों के साथ के लिए रह गये।

आखिर उस पुण्यधाम से विदा लेने की घड़ी आई। वहां के वायुमंडल में इतनी स्निग्धता थी कि वहां से हटने को मन नहीं होता था। अलकनंदा का अनवरत स्वर और पर्वत के धवल शिखर बार-बार अपनी ओर खींचते थे। नीलकंठ के उत्तुंग शृंग ने जैसे हमारे पैरों में जंजीर डाल दी थी। हम लोग दो कदम आगे बढ़ते थे, फिर रुक जाते थे और पीछे मुड़कर उस निर्जन प्रदेश में

पर्वतों की गोद में बसी पुरी की शोभा को निहारते थे। देव-दर्शनी पर तो हम सब बहुत देर तक खड़े रहे। बीसियों यात्री आ-जा रहे थे और 'बदरीविशाल' के जय-घोष के स्वर निरंतर गूंज रहे थे। हम लोगों ने प्रकृति को प्रणाम किया, पुरी को श्रद्धांजलि अर्पित की और आगे बढ़ चले।

चले तो ऐसे चले कि बीस मील चलकर पौने सात बजे शाम को सिंहधार पर जाकर रुके। बीच में लामबगड़ चट्टी पर मुश्किल से घंटेभर के लिए भोजन करने को यात्रा स्थगित की। मार्ग परिचित था और उतराई थी। फिर भी विष्णु-प्रयाग के बाद की दो मील की चढ़ाई ने जान सुखा दी। सबसे पहले विष्णुभाई वहां पहुंचे, उनके आने के कोई आधा घंटे बाद, यानी ७-७॥ पर शोभालालजी और मैं। देखते क्या हैं कि विष्णुभाई एक मकान के नीचे चबूतरे पर बैठे हैं। मैंने पूछा, "क्यों, जगह की व्यवस्था नहीं हुई?"

वह बोले, "चट्टी का यह मकान अच्छा है, पर इसका आदमी ऊटपटांग बात करता है।"

हम लोग ऊपर गये। मकान-मालिक भी आ गया। वह कहता था कि मैं इस बड़े कमरे को पूरा नहीं दे सकता। बगल की कोठरी में कोई दूसरी टोली ठहरी थी, जिसने बड़े कमरे में चूल्हा जला रक्खा था।

मैंने मकान-मालिक से पूछा, "कितनी जगह दोगे?"

उसने इशारा करके बताया—आधे कमरे से भी कम। मैं उससे पहले ही कह चुका था कि हमारी टोली बड़ी है। उसकी बात पर मुझे झुंझलाहट हो आई। मैंने कहा, "भाई मेरे, यह बताओ कि तुम सोने को जगह देना चाहते हो या बैठने को या

खड़े होने को ? हम लोग पूरा कमरा लेंगे। और किसीको नहीं आने देंगे।"

मेरी बात पर उसकी आवाज तीखी हो उठी। व्यंग्य से बोला, "तुम्हें इतना ही आराम चाहिए था तो अपना मकान साथ लेकर चलते!"

मैंने कहा, "कुछ भी कह लो, मकान साथ ला सके होते तो तुम्हारी इतनी बात क्यों सुननी पड़ती!"

उस कमरे में और भी यात्री आ गये थे। भले थे। उन्हें ज्यों-ही मालूम हुआ कि हमारी टोली बड़ी है और उसमें कुछ महिलाएं भी हैं तो वे स्वयं ही दूसरी जगह चले गये और हमें एक कोने को छोड़कर करीब-करीब सारा कमरा मिल गया।

इस कहा-सुनी का मन पर बड़ा खराब असर पड़ा। अब-तक की यात्रा मजे में हो गई थी। आखिरी समय पर तेज बात बोलने से क्या लाभ था! यह सब सोचकर और इस डर से कि कहीं आगे और कोई अप्रिय बात मुंह से न निकल जाय, मैंने सवेरे चार बजे तक के लिए मौन धारण कर लिया।

टोली के शेष लोग कोई १० बजे पहुंचे। आते ही भाभी ने कुछ कहा तो मैं चुप रहा। उन्होंने कहा—बोलते क्यों नहीं? मैंने एक पर्चे पर लिखकर उन्हें सारी बात बतादी। उन्होंने मौन तोड़ने के लिए बहुत आग्रह किया, पर मुझे चुप रहना ही ठीक लगा।

सारी टोली थककर चूर हो गई थी। सब अनुभव करते थे कि एक दिन में इतना चलना बुद्धिमानी की बात नहीं हुई। कुछ लोग तो इतने थक गये कि बिस्तर फैलाकर लेटे तो लेटे ही रहे। खाना भी नहीं खाया। दूध पीकर सो गये।

इतनी थकान के बाद अच्छी नींद कहां आनी थी!

: ३४ :

आखिरी अनुभव

सब दिन की तरह सवेरे जल्दी उठे और तैयार होकर पौने पांच बजे आगे की यात्रा पर चल पड़े। टोली की राय हुई कि पिछले दिन जो भूल की, अब वह नहीं होनी चाहिए। शेष यात्रा आराम के साथ करनी चाहिए।

कुछ घंटे सवेरे और थोड़ा-सा शाम को चलकर टंगणी-चट्टी पहुंचे। पहले से ही तय कर लिया गया था कि रात वहीं बिताई जायगी। पिछले दिनों की भांति टोली के कुछ लोग पहले पहुंच गये, जिनमें विष्णुभाई, शोभालालजी तथा मैं थे। एक मकान के ऊपर कमरे में ठहरने की व्यवस्था करके हम लोग थकान मिटाने के लिए दीवार के सहारे पैर ऊंचे करके लेट गये। टोली के बाकी लोग काफी देर में पहुंचे। लेकिन उनमें शोभालालजी की पत्नी तथा उनकी पड़ोसिन माताजी नहीं थीं। वे इतनी पीछे तो नहीं थीं कि सब आ जाते और वे रह जातीं! हम लोग नीचे आये, यात्रियों तथा दुकानदारों से पूछताछ की, पर कुछ पता न चला। चिंता होने लगी। कहीं कोई दुर्घटना न हो गई हो! पर जो यात्री सबसे बाद में पहुंचे, उन्होंने वैसी कोई बात नहीं बताई। थोड़ी और प्रतीक्षा की। नहीं आईं तो सोचा कि हो-न-हो, वे दोनों आगे निकल गईं। सामान आ चुका था, शोभालालजी ने एक बोझी पर अपना और उन दोनों का सामान रखवाया और यह सोचकर कि वे अगली चट्टी पर मिल जायंगी, एक टट्टू

पर सवार होकर वहां से रवाना हो गये।

चट्टीवाला बड़ा भलामानस था। उसकी दुकान पर मेवा थी। खरीदकर खाई। पूड़ी-साग भी उसने अच्छा बना दिया और बड़े प्यार से खिलाया।

स्थान बड़ा रमणीक था, भीड़भाड़ भी अधिक नहीं थी। फिर भी काकी और माताजी की चिंता के मारे रातभर हैरानी रही।

सवेरे जल्दी ही रवाना होने के विचार से कोई ४ बजे उठ बैठे। तैयार होकर चट्टीवाले का हिसाब करने लगे तो उसने कहा, "पूड़ियों के चार रुपये सेर के हिसाब से लूंगा।"

हम लोगों ने कहा, "भाई, इतने दाम तो अबतक कहीं भी नहीं लगे। ज्यादा-से-ज्यादा तुम साढ़े तीन रुपये के हिसाब से ले लो।"

हममें से सबने उसे समझाने की कोशिश की, पर वह कहां माननेवाला था! आखिर मार्तण्डजी से न रहा गया। उन्होंने कहा, "अच्छी बात है। यह लो चार रुपये के हिसाब से। लो, करलो अपना भला।"

रुपये दे दिये गये, पर इतनी बातचीत से दुकानदार सहम गया। बोला, "अच्छी बात है। साढ़े तीन ही लगा लीजिये।"

पर अब हम लोगों का आग्रह था कि नहीं, हम चार ही देंगे। बड़ी विचित्र-सी स्थिति उत्पन्न हो गई। दोनों ही अपनी-अपनी बात पर अड़े थे। आखिर दुकानदार ने साढ़े तीन का हिसाब लगाकर बाकी के पैसे सामने रख दिये। हम लोगों ने सोचा कि समय बरबाद करने में दुकानदार का तो कुछ बिगड़ेगा नहीं, हम लोगों को देर हो जायगी। सो पैसे उठाकर चुपचाप जेब के हवाले

किये और चल दिये।

अंतिम चट्टी आई गरुड़गंगा। वहां पहुंचकर सबसे पहले काकी और माताजी को तलाश किया। वे कालीकमलीवाले की धर्मशाला में मिल गईं। शोभालालजी भी उनके साथ थे। पूछने पर मालूम हुआ कि टंगणी-चट्टी पर काकी ने हम लोगों को तलाश किया था, एक जगह खड़े होकर आवाजें भी दीं; लेकिन जब न मिले तो यह सोचकर कि हम आगे निकल गये हैं, वे भी आगे बढ़ गईं।

गरुड़गंगा पर स्नान करने का बड़ा माहात्म्य है। जाते समय जल्दी में हम लोगों ने स्नान नहीं किया था। इसलिए सब-की राय हुई कि कुछ देर हो जाय तो कोई बात नहीं, स्नान करके ही चलना चाहिए। स्नान किया, नाश्ता किया और ताजे होकर चले। ८ बजे पीपलकोटी पहुंच गये।

: ३५ :

यात्रा की समाप्ति

पीपलकोटी में आकर देखते क्या हैं कि यात्रियों की बेशुमार भीड़ है। सैकड़ों यात्री दो-दो, तीन-तीन दिन से पड़े थे। माथा ठनका कि कहीं हमें भी बस में जगह न मिले और कई दिन वहां पड़ा न रहना पड़े ! लेकिन चूंकि बदरीनाथ से ही हम लोगों ने बस के अधिकारियों को बस में जगह सुरक्षित करने के लिए तार दे दिया था, इसलिए एकदम निराशा नहीं थी। सीधे बस के दफ्तर में जाकर बात की तो मालूम हुआ कि हमारा तार पहुंच गया था और अधिकारियों ने आश्वासन दिया कि हमें जल्दी-से-जल्दी स्थान देने का प्रयत्न करेंगे।

सामान आने के बाद उसे संभाला। बोझियों से विदा ली। इतने दिन साथ रहने के कारण कई बोझियों की हम लोगों से बड़ी आत्मीयता होगई थी। अलग होने पर उनका और हम लोगों का जी भर आया। जल्दी-जल्दी भोजन किया। ११ बजे की बस मिली। चमोली, नंदप्रयाग, कर्णप्रयाग और रुद्रप्रयाग होकर ७३ मील का रास्ता तय करके शाम को पांच बजे श्रीनगर पहुंचे। रास्ते में बस की रफ्तार से लगा कि उसमें कोई खराबी है। जब अधिकांश रास्ता पार कर चुके तो ड्राइवर ने बताया कि गाड़ी के ब्रेक काम नहीं कर रहे हैं। सुनकर दिल दहल उठा। ऐसे विकट मार्ग में ब्रेकों का न होना अपनी और यात्रियों की जान को खतरे में डालना है। पर संतोष की बात यह थी कि ड्राइवर

बड़ा कुशल था। वर्षा होते हुए भी उसने कहीं कोई दुर्घटना न होने दी।

श्रीनगर पर तत्काल बस मिल गई। ६॥ बजे कीर्तिनगर पहुंचे। वहां भीड़ के कारण ठहरने के लिए स्थान पाने में बड़ी कठिनाई हुई। जैसे-तैसे बहुत थोड़ी जगह मिली, उसीमें रात काटी। सवेरे सामान उठाने के लिए नये बोझी ढूंढ़ने पड़े। वहां स्त्रियां भी बोझा उठाती हैं और बड़ी मुस्तैदी के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान पर सामान पहुंचा देती हैं।

अगले दिन पांच बजे सवेरे बस से रवाना हुए। ऋषीकेश ६४ मील है। रास्ते की विकटता को देखते हुए अनुमान था कि १० बजे तक वहां पहुंच जायंगे, लेकिन अचानक रास्ते में बस खराब हो जाने से एक घंटे की देरी हो गई। ११ बजे जाकर वहां लगे। हरिद्वार की बस तैयार खड़ी थी। बैठकर हरिद्वार पहुंचे। विष्णु-भाई और घोरपड़ेजी को दिल्ली लौटने की जल्दी थी। वे उसी दिन लौट गये। हम लोग उस दिन रुक गये। अच्छी तरह से गंगा-स्नान किया और रातभर विश्राम करके अगले दिन दोपहर बाद की बस से रवाना होकर रात को दिल्ली आ गये।

कुल मिलाकर २०० मील पैदल चले और २७० मील बस में। दिल्ली से हरिद्वार और हरिद्वार से दिल्ली तक का सफर अलग। २१ दिन में यात्रा पूरी हुई।

कहने की आवश्यकता नहीं कि यात्रा बड़े आनंद से हुई। इस यात्रा में हिमालय को विविध रूपों में देखा। उसकी विराटता के दर्शन किये। उसके शिखरों की ऊंचाइयों पर और उसकी उपत्यकाओं की गहराइयों में जिस शान्ति की अनुभूति हुई, वह वर्णनातीत है। आज भी शहर के कोलाहल-

भरे जीवन से जब मन ऊबता है, तो वह बार-बार उस अलौकिक भूमि में पहुंच जाता है, जहां पर्वत अपना सिर ऊंचा किये खड़े हैं, पुण्य-सलिला सरिताएं अखंड गति से प्रवाहित होती हैं, हरे-भरे वृक्ष शीतल छाया प्रदान करते हैं, प्रपातों का कलकल-निनाद कानों में अमृत-वर्षा करता है, हिम के दर्शन से प्राणों को आनंद मिलता है और प्रकृति माता के सतत स्पर्श से शीतलता अनुभव होती है।

: ३६ :

फलश्रुति

हमारे देश में तीर्थ-यात्राएं प्रायः धार्मिक उद्देश्य से की जाती हैं। अतः इन यात्राओं से सबसे पहला लाभ तो यह होता है कि मनुष्य के हृदय में धर्म और संस्कृति के प्रति संस्कार सुदृढ़ होते हैं। अपनी दुर्बलता और अप्राकृतिक रहन-सहन के कारण लोगों में जो जड़ता आ जाती है, वह कुछ-न-कुछ अंश में इन यात्राओं से कम हो जाती है। काकासाहब कालेलकर के शब्दों में "कष्ट झेलने से, स्वेच्छापूर्वक तरह-तरह की असुविधाएं सहने से मनुष्य की शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक भूख जगती है और जीवन का आनन्द सात्विक एवं विशुद्ध बनता है।"

तीर्थों के साथ अक्सर ऐसी धर्म-कथाएं जुड़ी होती हैं, जो जीवन के उत्कर्ष में सहायक होती हैं। तीर्थ-यात्रा करते हुए उन कथाओं का स्मरण होता जाता है और इस प्रकार अनायास उन स्थानों में धर्म जीवित और जाग्रत रहता है। उसका लाभ सहज ही यात्रियों को मिलता रहता है।

तीर्थ-यात्राएं प्रायः शुद्ध भाव से की जाती हैं। इनमें लोग ब्रह्मचर्य का यथासंभव पालन करते हैं, किसीको धोखा नहीं देते, असत्य नहीं बोलते। इस प्रकार जीवन के राजमार्ग पर चलने का मनुष्य को एक बार चस्का पड़ जाता है तो वह अक्सर उसी मार्ग पर आगे बढ़ने की कोशिश करता है।

संयत जीवन, उन्मुक्त वायु एवं वातावरण में सतत पर्यटन

से लोगों का स्वास्थ्य भी सुधरता है। प्रायः देखा जाता है कि कमजोर और बीमार यात्री भी इन यात्राओं को कर आते हैं। इसमें धर्म के प्रति उनकी आस्था तो एक सबल कारण होती ही है, किन्तु वहां की प्राणदायक जलवायु का भी कम हाथ नहीं रहता।

प्रकृति की लीला को देख-देखकर जो आनंद मिलता है, उसकी तो महिमा ही निराली है। नाना प्रकार के दृश्य आंखों को धन्य कर देते हैं, प्राण नई ताजगी, नई स्फूर्त्ति पाते हैं।

यात्रा में भांति-भांति के लोग मिलते हैं। उनकी भाषा, उनके रीति-रिवाज, उनकी वेश-भूषा, उनका रहन-सहन, आदि अलग-अलग होते हैं। उनसे ज्ञानवर्द्धन तो होता ही है, साथ ही यह भी मालूम होता है कि इस विविधता की जड़ में कितनी गहरी एकता विद्यमान है, जो भारत-भूमि की बहुत बड़ी विशेषता है।

अपनी 'हिमालय की यात्रा' में काकासाहब कालेलकर ने ठीक ही लिखा है, "भूरचना की दृष्टि से और भूस्तरशास्त्र की दृष्टि से भी हिमालय की यात्रा में बहुत-सी जानकारी मिलती है। यदि हिमालय रास्ते में आड़ा न पड़ा होता तो रूस और चीन की ठण्डी हवाओं और वहां की कठोर संस्कृति, दोनों के हमले हमपर हुए होते। यदि गंगा नदी न होती तो जैसे हमारी आज की सारी शान-शौकत न होती, वैसे ही यदि हिमालय न होता तो हिमालय जैसी उत्तुंग आर्य-संस्कृति भी यहां कभी न पनप पाती। देश की आत्मा और देश का विराट स्वरूप, दोनों का एक ही साथ दर्शन करने के लिए यात्रा ही एकमात्र साधन है।"

इस यात्रा का एक बड़ा लाभ यह भी है कि हमें पता चलता है कि हिमालय के रूप में हमारे देश के पास कितनी महान निधि है और उसके साथ हमारा आत्मीयता का नाता जुड़ जाता है।

: ३७ :

आवश्यक सूचनाएं

केदार-बदरी की यह यात्रा थोड़ी कठिन अवश्य है, लेकिन यदि कुछ बातों का ध्यान रख लिया जाय तो मजे में की जा सकती है।

सबसे पहली ध्यान देने की बात है खाने की। बहुत-से यात्री अपने साथ खाद्य सामग्री तैयार कराकर घर से ले आते हैं और उसे कई-कई दिन तक खाते रहते हैं। पहाड़ों पर चलने के कारण भूख खूब लगती है। इसलिए कसकर खाते हैं। परिणाम यह होता है कि किसीको दस्त होते हैं तो किसीको बुखार आ जाता है। यात्रियों को चाहिए कि वे बासी भोजन न करें और भूख से कुछ कम ही खायं। जगह-जगह पर भोजन की व्यवस्था होती है। यदि स्वयं पकाना चाहें तो सामान और बर्तन सब चट्टियों पर मिल जाते हैं। अच्छा तो यह हो कि स्वयं हल्का भोजन तैयार कर लें। यदि यह संभव न हो तो किसी भी चट्टी पर दुकानदार से बनवा लें।

दूसरी सावधानी है पानी की। पहाड़ों पर पानी प्रायः झरनों का मिलता है और पैदल चलने के कारण भूख की तरह प्यास भी खूब लगती है। जहांतक हो, कभी खाली पेट पानी न पियें। और कुछ न हो तो थोड़ीसी मिश्री अथवा काली मिर्च ही खा लें। झरने से लेकर फौरन पानी किसी भी दशा में न पियें। पानी में पत्थर के छोटे-छोटे कण होते हैं, जो पेट में विकार पैदा कर देते हैं। अतः जहांतक हो, सरकारी नलों के पानी का ही प्रयोग करें, जोकि

थोड़े-थोड़े फासले पर बराबर मिलते हैं। लेकिन अगर कहीं वैसी सुविधा न हो तो झरने से पानी लेकर थोड़ी देर रख लें, जिससे पत्थर के बारीक कण नीचे बैठ जायं। उसके बाद पानी को छान-कर पीने में कोई खतरा नहीं है।

तीसरी बात है गंदगी से बचना। उत्तर प्रदेश की सरकार यात्रा के अवसर पर प्रत्येक चट्टी पर शौचालय तथा मूत्रालय बनवा देती है। यात्रियों को चाहिए कि वे उन्हींका प्रयोग करें और रास्ते को किसी भी हालत में गंदा न करें। हमने देखा कि कुछ तो लापरवाही और कुछ सुविधा की दृष्टि से बहुत-से यात्री रास्ते में गंदगी कर देते हैं। इससे दूसरे यात्रियों को असुविधा तो होती ही है, स्वास्थ्य भी खतरे में पड़ता है।

सर्दी अधिक होने के कारण बहुत-से यात्री आलस्यवश स्नान करने से बचते हैं। यह उचित नहीं है। स्नान करके कपड़े बदल लेने से एक तो सफाई रहती है, दूसरे शरीर और मन ताजे रहते हैं, फुर्ती अनुभव होती है। गौरीकुंड और बदरीनाथ में गरम पानी के कुंड हैं। अन्य स्थानों पर भी स्नान की ठीक व्यवस्था है।

चौथी बात है चलने के संबंध में। जहांतक हो, यात्रा मजे-मजे में करनी चाहिए। भाग-दौड़ के लिए तो शहर ही काफी है। ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि यात्रा शांति से हो और उसका पूरा-पूरा आनंद मिले। बड़े तड़के प्रारंभ करके ९-९॥ बजे तक चलना समाप्त कर देना चाहिए। बाद में धूप इतनी तेज हो जाती है कि चलने में जी घबराता है। थकान अधिक होती है। ९॥ बजे तक यात्रा करके भोजन-विश्राम करें। ३-४ बजे फिर चल सकते हैं। इस प्रकार यात्रा दो भागों में बांट लेनी चाहिए। हद-से-हद १० बजे के बाद चलने की गलती कदापि न करें।

पांचवीं बात यह है कि यात्रियों को अपने साथ अधिक सामान नहीं लेना चाहिए। कपड़े धोने की हर जगह पर समुचित व्यवस्था है। यदि स्वयं न धो सकें तो अपने बोझी को कुछ पैसे देकर यह काम कराया जा सकता है। थोड़े-से ठंडे कपड़ों से काम चल जाता है। गरम कपड़ों की जरूरत मुख्यतः केदारनाथ और बदरीनाथ में पड़ती है। वहां जितने चाहें उतने ओढ़ने-बिछाने के कपड़े मिल जाते है। ऐसी हालत में यदि दो कंबल ओढ़ने को और एक बिछाने को हो तो पर्याप्त है।

खाने-पीने का सामान भी लादने की जरूरत नहीं है। हर जगह आटा, दाल, चावल मिल जाते है। चीजें कुछ महंगी जरूर होती है, लेकिन हर घड़ी की चिंता से कुछ अधिक पैसा डालना ज्यादा फायदेमंद रहता है।

कीमती चीजें साथ में रखने की जोखम किसी भी हालत में नहीं उठानी चाहिए। वैसे उधर के आदमी बहुत ही ईमानदार और सच्चे होते हैं, फिर भी यात्रियों में ही कुछ दुष्ट प्रकृति के लोग सम्मिलित हो जाते हैं और वे मौका देखकर चीजों पर हाथ साफ कर देते है।

छठी बात यह है कि अपने साथ कुछ दवाइयां अवश्य रखनी चाहिए। अमृतधारा अनिवार्य है। साथ ही चोट तथा दस्त आदि के लिए भी सामान्य औषधियों का साथ होना आवश्यक है। लौंग, कालीमिर्च, सौंफ, मिश्री आदि भी झोले में रहनी चाहिए। चढ़ाई पर बार-बार गला सूखता है। इसलिए थोड़ी मिश्री मुंह में रखकर चढ़ाई की जाय तो चलने में सुविधा होती है।

पानी की एक केटली (बोतल) बड़ी जरूरी है। पैदल चलने में नीचे कील लगी एक लाठी हाथ में अवश्य रहनी चाहिए। उससे

उतराई-चढ़ाई दोनों में बड़ी मदद मिलती है।

सातवीं बात है अपनी सामर्थ्य के अंदाज की। जहांतक हो, ऐसी यात्रा का आनंद पैदल चलकर ही लेना चाहिए। लेकिन यदि अपने अंदर उतना विश्वास न हो अथवा शरीर दुर्बल हो तो सवारी की व्यवस्था कर लेनी चाहिए। केदारनाथ का मार्ग अपेक्षाकृत कठिन है। त्रिजुगीनारायण, तुंगनाथ आदि की चढ़ाई तो बहुत ही विकट है। अतः अकारण हिम्मत दिखाकर स्वास्थ्य को खतरे में डालने से यथा-संभव बचना चाहिए।

यात्रा पर जाने से पहले उसके बारे में जितना साहित्य मिले, वह सब पढ़ लेना चाहिए। उससे न केवल विभिन्न स्थानों के इतिहास और भूगोल की जानकारी होगी, अपितु उन्हें देखने के लिए एक पृष्ठभूमि भी तैयार हो जायगी। यदि पहले से पता न हो तो बहुत-सी देखने योग्य चीजें छूट जाती हैं। पूर्व-परिचय हो तो चीजों को देखने में विशेष रस आता है।

बहुत-से लोगों का मानना है कि यह यात्रा केवल बूढ़े स्त्री-पुरुषों को करनी चाहिए। इस मान्यता के पीछे धर्मांधता के अलावा कुछ नहीं है। हमारा तो कहना है कि छोटे-बड़े सबको जाना चाहिए। नगरों के आपाधापी के जीवन में जिनके स्नायु क्षीण हो गये हैं, जिनकी मानसिक शांति भंग हो गई है, उन्हें तो इस यात्रा से आश्चर्यजनक लाभ हो सकता है। यात्रा के दरमियान पर्वतों, नदियों, वनों, प्रपातों आदि का साथ रहता है। वर्ष में ग्यारह मास स्वस्थ रहने के लिए भी एक मास की यह यात्रा वांछनीय और हितकर है।

परिशिष्ट

१. मोटर का मार्ग

हरिद्वार से ऋषिकेश	१५ मील
ऋषिकेश से देवप्रयाग	४२ मील
देवप्रयाग से कीर्तिनगर	२१ मील
कीर्तिनगर से श्रीनगर	३ मील
श्रीनगर से रुद्रप्रयाग	२२ मील
रुद्रप्रयाग से कर्णप्रयाग	२१ मील
कर्णप्रयाग से नंदप्रयाग	१३ मील
रुद्रप्रयाग से अगस्त्य-मुनि	११ मील[1]
चमोली से पीपलकोटी	१० मील
पीपलकोटी से हरिद्वार	१४८ मील
पीपलकोटी से कोटद्वार	१७६ मील

२. पैदल-यात्रा का मार्ग

अगस्त्य-मुनि से केदारनाथ	३७ मील
केदारनाथ से त्रिजुगीनारायण	१६ मील
केदारनाथ से तुंगनाथ	४० मील
केदारनाथ से चमोली	५६ मील
पीपलकोटी से बदरीनाथ	३८ मील
बदरीनाथ से केदारनाथ	१०४ मील

[1] अब इस रास्ते पर आगे तक बस चलने लगी है ।

३. चट्टियां तथा अन्य जानकारी

१. रुद्रप्रयाग से केदारनाथ

स्थान	समुद्रतट से ऊंचाई फुटों में	मील	डाक, तारघर टेलीफोन	अस्पताल	औषधालय	डाक-बंगला
रुद्रप्रयाग	२०००	०	डा० ता०	है	है	है
छतोली	—	५	—	—	—	—
मठ (तिलवाड़ा)	—	१	—	—	—	—
रामपुर	—	१	—	—	—	—
सौरगढ़	२३००	२	—	—	है	है
अगस्त्य-मुनि	३०००	२	डा०	है	—	है
सौड़ी	—	२	डा०	—	—	—
चंद्रापुरी	—	२	डा०	है	—	—
भीरी	३०००	२॥	डा०	है	—	—
कुंड	—	२	—	—	—	—

गुप्तकाशी	४२५०	२॥	डा० ता० टे०	है	—	—
नाला-चट्टी	—	१॥	—	—	—	—
नारायण कोटी	—	२	—	—	—	—
व्यूंगमल्ला	—	१	—	—	—	—
व्यूंगतल्ला	—	१	—	—	—	—
मैंखंडा	—	२	—	—	—	—
फाटा	५०५०	२	डा०	—	है	है
रामपुर	—	३	—	—	—	—
सोमद्वारा	—	३॥	—	—	—	—
गौरीकुंड	६५००	३	—	—	—	—
रामबाड़ा	—	४	—	—	—	—
केदारनाथपुरी	११५५३	३	डा० ता० टे०	है	है	है

२. केदारनाथ से बदरीनाथ

स्थान	समुद्रतट से ऊंचाई फुटों में	मील	डाक, तारघर टेलीफोन	अस्पताल	औषधालय	डाक-बंगला
केदारनाथ	११५५३	०	डा० ता० टे०	है	है	है
रामबाड़ा	—	३	—	—	—	—
गौरीकुंड	६५००	४	—	—	—	है
त्रिजुगीनारायण	७८००	५॥	—	—	—	—
रामपुर } नाला }	—	३ पुराना मार्ग	—	—	—	—
ऊखीमठ	४३००	३	डा०	है	है	है
कंथा	—	२॥	—	—	—	—
ग्वालियाबगड़	—	२	—	—	—	—
दैढ़ा	—	१॥	—	—	—	—
पोथीबासा	—	३	—	—	—	—
दोगलभीटा	७७००	२	—	—	—	है
वाणियाकुंड	—	१	—	—	—	—

चौपता	—	१	—	—	—	—
तुंगनाथ	१२०७२	३	—	—	—	—
भीमद्वार	—	३	—	—	—	—
पांगरबासा	—	३	—	—	—	—
मंडलचट्टी	—	४	डा० ता०	—	—	है
वैरागना	—	१	—	—	—	—
गोपेश्वर	—	४	—	—	—	—
चमोली(लालसांगा)	३५००	३	डा० ता०	है	है	है
मठ	—	१।	—	—	—	—
छिनका	—	१।	—	—	—	—
सियासेण	—	२	—	—	—	—
हाट	—	३	—	—	है	—
पीपलकोटी	४३५०	३	डा० ता० टे०	है	—	है
गरुड़गंगा	—	४	—	—	—	—
टंगणी	—	२	—	—	—	—
पातालगंगा	—	२	—	—	—	—
गुलाबकोटी	५३००	२॥	—	—	—	है
हेलंग (कुम्हार)	—	२॥	—	—	—	—
पैंनी	—	१	—	—	—	—
खनौटी	—	१	—	—	—	—
झड़कुला	—	१	—	—	—	—
सिंहधार	—	२	—	—	—	—

स्थान	समुद्रतट से ऊंचाई फुटों में	मील	डाक, तारघर टेलीफोन	अस्पताल	औषधालय	डाक-बंगला
जोशीमठ (ज्योतिर्मठ)	६१५०	१	डा० ता०	है	है	है
विष्णुप्रयाग	—	२	—	—	—	—
बलदौड़ा	—	१	—	—	—	—
घाट	—	३	—	—	—	—
पांडुकेश्वर	६४५०	२	डा०	—	—	है
विनायक	—	१	—	—	—	—
लामबगड़	—	३	—	—	—	—
हनुमान-चट्टी	—	२	—	—	—	—
बदरीनाथपुरी	१०२४४	५	डा० ता० टे०	है	है	है

३. बदरीनाथ से बसुधारा

स्थान	समुद्र से ऊंचाई (फुटों में)	मील
बदरीनाथ	१०,२४४	०
माणागांव	१०,५६०	२
वसुधारा	१२,०००	३

४. बदरीनाथ से माता-मूर्ति

स्थान	समुद्र से ऊंचाई (फुटों में)	मील
बदरीनाथ	१०,२४४	०
मातामूर्ति	—	२।

५. बदरीनाथ से चरण-पादुका

स्थान	समुद्र से ऊंचाई (फुटों में)	मील
बदरीनाथ	१०,२४४	०
चरण-पादुका	—	२

६. बदरीनाथ से शेषनेत्र

स्थान	समुद्र से ऊंचाई (फुटों में)	मील
बदरीनाथ	१०,२४४	०
शेषनेत्र	—	१

७. बदरीनाथ से सतोपंथ और विष्णुकुंड

स्थान	समुद्र से ऊंचाई (फुटों में)	मील
बदरीनाथ	१०,२४४	०
मातामूर्ति	—	२
चमतोली	—	३॥
लक्ष्मीबन	—	२
सौधारा	—	२॥
चक्रतीर्थ	—	३
सतोपंथ	—	२॥
सोनकुंड	१४,४००	१॥
विष्णुकुंड	—	॥।

मान-चित्र
बदरी-केदार
मुख्य स्थान
पड़ाव
शिखर
मोटर मार्ग
रेल मार्ग
पैदल मार्ग
जिला सीमा
नदी
प्रादेशिक सीमा
जमुनोत्री
गंगोत्री
केदारनाथ
बदरीनाथ
टिहरी जिला
टिहरी
देहरादून
हरिद्वार
ऋषिकेश
देवप्रयाग
व्यासघाट
कीर्तिनगर
श्रीनगर
पौड़ी
लैंसडोन
कोटद्वार
१३२०
कर्णप्रयाग
चमोली
पीपलकोटी
जोशीमठ
ऊखीमठ
चोपता
माणा
माणा घाट
पौरवाल
लैंसडोन
बैजनाथ
कौसानी
बागेश्वर
नन्दप्रयाग
उत्तरकाशी
भटवारी
गंगनाणी
धराम
बारी
त्रिजुगीनारायण
जमुना नदी
भागीरथी नदी
अलकनन्दा नदी
मन्दाकिनी नदी
गंगा नदी
गढ़वाल जिला
बदरपूछ
२०७२०
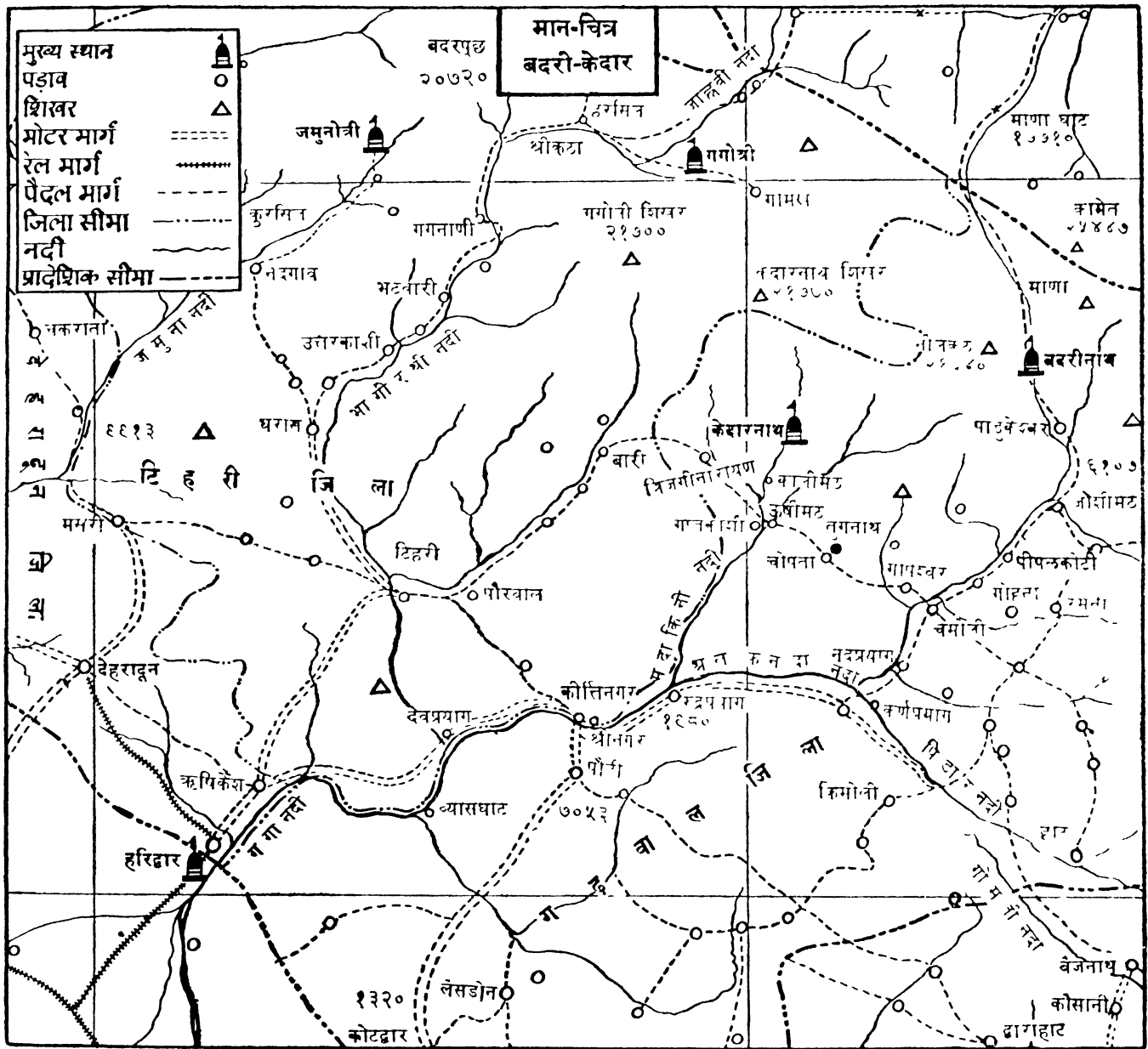
'मंडल' का यात्रा-साहित्य

१. हिमालय की गोद में
२. लद्दाख-यात्रा की डायरी
३. जापान की सैर
४. जय अमरनाथ
५. रूस में छियालीस दिन
६. दुनिया की सैर : अस्सी दिन में
७. यूरोप-यात्रा : प्राकृतिक चिकित्सक की
८. अतलांतिक के उस पार
९. आज का इंगलिस्तान
१० रूसी युवकों के बीच
११. उत्तराखंड के पथ पर

अढ़ाई रुपये